भाग्य-चक्र

सुदर्शनजी की और पुस्तकें

नाटक

अंजना, सिकंदर, आनरेरी मजिस्ट्रेट

कहानियाँ

पुष्पलता, सुप्रभात, तीर्थ-यात्रा, सुदर्शन-सुधा,
सुदर्शन-सुमन, पनघट, चार
कहानियाँ, नगीने, परिवर्तन

बच्चोंके लिए

खटपट लाल, रुस्तम-सोहराब, सात अजूबे,
पारस, फूलवती, अंगूठीका मुकदमा, राजकुमार
सागर, बच्चोंका हितोपदेश, सात कहानियाँ, वीर दयानंद

गीत

झंकार, दिलके तार

लेख

झरोखे, मनकी मौज

भाग्य-चक्र

[एक नाटक तीन अंकों में]

सुदर्शन
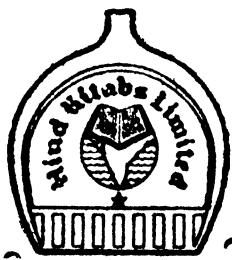
हिन्द किताब्स लिमिटेड
बंबई

चौथा संस्करण

नवंबर १९४७

मूल्य २॥।)

प्रकाशक : वी० कुलकर्णी, हिन्द किताब्स लि०, २६१–२६३ हार्नबी रोड, बंबई

मुद्रक : र. दि. देसाई, न्यू भारत प्रिं. प्रेस, केलेवाड़ी, गिरगाँव, बंबई

भूमिका

आजसे लगभग चालीस साल पहले ला कालिज, लाहौरके प्रिन्सिपल लाला कुंवर सेनने उस वक्तके हिंदुस्तानी नाटक पर आलोचना करते हुए लिखा थाः—

> नाटक और तमाशे जो आजकल दिखाए जाते हैं, उनमें से ज्यादा ऐसे हैं, जिनमें नाटक की कोई बात भी नहीं, पाई जाती। कुछएक को छोड़कर बाकी सब नाटकों के कथानक बेहूदा, भाषा भद्दी (बल्कि कभी-कभी बाज़ारी) और गीत वह जिनमें अंगरेज़ी गतों को देशी रागों में ऐसी बुरीतरह मिलाया जाता है; कि भगवान ही बचाए। रागी आजकल थिएटर देखना पसंद नहीं करते। अगर कभी शौक़ उन्हें पंडाल के अंदर ले भी जाता है, तो वह बेतुकी चीज़ें सुनते ही उठ खड़े होते हैं। मतलब यह कि आजकल हिन्दुस्तानी नाटकों में सुरुचि का खून होता है।

चालीस सालके बाद भी हम इस आलोचना को फिर से पढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि कुछ सज्जनों ने हिन्दुस्तानी नाटक को गढ़ों से निकालकर आकाश पर पहुँचाने की कोशिशें की हैं, और उनकी कोशिशें किसी अंश तक सफल भी हुई है, लेकिन हिन्दुस्तानी नाटक में ऐसी उन्नति नहीं हुई कि देश के हर हिस्से से दिखाई दे और रंगमंच पर ऐसे नाटक खेले नहीं गए, जिन्हें देखकर मुँह से आह या वाह निकल जाए। न हमारे देश की किसी भी भाषा में ऐसे नाटक अभी तक हैं, जिन्हें हम साहित्य और कला के पारखियों के सामने गर्व से उपस्थित कर सकें।

इसका कारण यह है कि जो साहित्यिक सूझ-बूझवाले हैं, और जिनकी आँखें नाटक की अच्छाइयों और बुराइयों को पहचानती हैं, उनमें दो तरह के लोग हैं। एक वह जिनकी रंगमंच तक पहुँच नहीं, दूसरे वह जिन तक रंगमंच की पहुँच नहीं। परिणाम यह हुआ कि कुछ अच्छे नाटक तैयार हुए, उन्हें रंगमंच न मिला। कुछ नाटकवालों ने अच्छे नाटक ढूंढे, उन्हें अच्छे नाटक न मिले। रंगमंच खाली रह गया, नाटक एक-दो बार छप-छपाकर समाप्त हो गए। रंगमंच ने फिर वही बातूनी और बेसमझ मुंशी पकड़ लिए, मुंशियों ने फिर वही बाज़ारी आर कुरुचि-पूर्ण चीज़ें देनी शुरू कर दीं, जिनसे सुरुचि जागती नहीं, परे भागती है। इन मुंशियों में बहुत से ऐसे हैं, जिन्होंने न अच्छे नाटक पढ़े हैं, न अच्छे नाटक की बारीकियाँ समझते हैं। उनके पात्र न हम लोगों की तरह रहते हैं, न हम लोगों की तरह बोलते हैं। इसलिए वह दुनिया से बाहर के जीव हैं, और जीवन को छूने की उनमें शक्ति नहीं। यद्यपि नाटक का सबसे बड़ा गुण यह है कि उसकी जड़ें जीवन में गड़ी हों, और वह जीवन से ऊपर उठे, मगर जीवन से दूर न चला जाए।

इस बीच में जो दो-चार अच्छे साहित्यिक नाट्यकार रंगमंच की तरफ़ आ निकले थे, उन्हें या बुढ़ापे ने कोने में बिठा दिया, या मौत ने अंधकार में धकेल दिया। इधर सिनेमा अपना रंग और रूप लेकर आगे बढ़ा। बच्चा था तो क्या हुआ, शोखियों की उम्र थी, शरारतों के दिन थे, देखते देखते उसने नाटक को चारों शाने चित गिरा दिया और उसके राज्य पर अधिकार जमा लिया। अब हाल यह है कि चारों खूंट सिनेमा का सिक्का चलता है, नाटक को कोई पूछता भी नहीं। कल हर जगह शासन करता था, आज दर-दर भीख माँगता है।

लेकिन अगर हिन्दुस्तानी साहित्य को उन्नति के मैदान में आगे बढ़ना और ऊपर उठना है, तो उसे अपने नाटक को फिर से उसके आसन पर बिठाना होगा। सिनेमाका शौक़ यूरोप और अमरीका में हिन्दुस्तान से कम नहीं। वहाँ एक-एक चल-चित्र पर इतना रुपया खर्च

होता है कि हम सुनकर विश्वास ही नहीं करते। मगर वहाँ नाटक की जगह अब भी मौजूद है। हमारे एक मित्र ने, जो अभी-अभी यूरोप और अमरीका से होकर आए हैं, हमें बताया है कि वहाँ जब कोई नया नाटक खेला जाता है, तो छै छै महीने तक की सीटें पहले से बुक हो जाती हैं। एक हमारा देश है कि यहाँ न कोई अच्छी कंपनी बनती है, न कोई अच्छा नाटक खेला जाता है।

नाटक केवल मन-बहलावे की चीज़ नहीं। नाटक साहित्य के बाग़ की बहार है। नाटक कला के यौवन की अँगड़ाई है। नाटक साहित्य की रगों में जोश और जवानी का लहू है। जिस भाषा में नाटक नहीं, वह भाषा ग़रीब है और जिस देश के पास यह चीज़ नहीं, वह देश प्रचार के सबसे बड़े साधन से वंचित है।

सुदर्शन

पात्र-परिचय

पुरुष

हीरालाल	पंजाब का एक प्रसिद्ध लखपति
शामलाल	हीरालाल का भाई
शंकर	एक बदमाश
दुर्गादास	एक ग़रीब आदमी
सूरदास	काशी का एक अंधा गवैया
बाटलीवाला	कालीदास नाटक कंपनी का पारसी मालिक
जयकृष्ण	बाटलीवाला का सहकारी
दिलीप	हीरालाल का बेटा
दीपक	दिलीप का दूसरा नाम
भंडारी	एक इंजीनियर

नौकर, दरबान, साधु, यात्री, धोबी, दर्ज़ी, दर्शक, विद्यार्थी, पुलिस के आदमी, जासूस, डाकिया, डाक्टर, मसख़रा।

स्त्री

लाजवंती	शामलाल की स्त्री
कल्लो की माँ	सूरदास की दासी
रूपकुमारी	एक पढ़ी-लिखी लड़की
यशोदा	रूपकुमारी की माँ

आया, साधुनी, लीला, नर्सें आदि आदि।

भाग्य-चक्र

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—लाहौरमें शामलालका घर

समय—प्रातःकाल नौ बजे

[शामलाल एक शानदार मेज़ के सामने बैठा है, और शंकरदाससे बात-चीत कर रहा है ।]

शाम०—शंकरदास ! तुम कहोगे, मैं कैसा आदमी हूं ? मगर भई मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता, कि भाई साहब ऐसा अनर्थ कर सकते हैं !

शंकर०—अब मैं क्या कहूं इस बारेमें ?

शाम०—(सुना अनसुना करके) मैंने उनकी जितनी सेवा की है, यह वह भी जानते हैं । सारा सारा दिन घूमता फिरता हूं । रात के दो-दो बजे आकर खाना खाता हूं । उनका जितना कार-बार है—लेना देना,

मुक़द्मे करना, मकान बनवाना, ख़रीदना, बेचना, सबका भार मैंने सँभाला हुआ है। दो दिन दफ़्तर न जाऊँ, तो सारा काम-काज चौपट हो जाए। एक दिन खुद कहते थे, मेरा सारा कार-बार तू ही करता है। तू न हो, तो मेरा काम औंधा हो जाए।

शंकर०—अरे भाई! यह भी क्या कहने की बातें हैं? सारी दुनिया जानती है! दुनिया अंधी नहीं है।

शाम०—और इसका इनाम यह है, कि जब अपना दान-पत्र तैयार करने लगे, तो मेरा ध्यान तक न आया? सब सम्पत्ति बेटे के नाम—मेरे नाम एक पैसा भी नहीं। गरदन काटके रख दी मेरी।

शंकर०—कहते होंगे, नौकरी करता है, वेतन लेता है। अब और क्या दूँ? नौकरको कोई घर उठा के थोड़ा दे देता है।

शाम०—मगर नौकर नौकरी करता है, मालिक के लाभ-हानि की परवा नहीं करता। अगर मैं भी नौकरी करता, तो श्रीमान् जी के लाखों रुपए बैंक में जमा न होते। मेहनत बैल करता है, मज़े किसान उड़ाता है।

शंकर०—इसमें क्या संदेह है, अगर कोई चालाक आदमी होता, तो पहले अपना घर भरता, फिर भाईका ख़्याल करता। पहले अपना आप, पीछे प्रभुका जाप।

शाम०—हम धर्मात्मा ही बने रहे।

शंकर०—मगर आज-कल धर्मात्माओं को पूछता कौन है? कोई भी नहीं।

शाम०—तुम्हारी यह बात झूठ! मैं मानता हूँ, कि समय बदल गया है। धन हर जगह इज़्ज़त पाता है। मगर अब भी ऐसे लोगों

का अभाव नहीं, जो धनवानों की बात भी नहीं पूछते, महात्माओंके चरण चूमते हैं। सच पूछो, तो संसार ऐसे ही महात्माओं के बल पर खड़ा है। वर्ना नरक बहुत दूर नहीं है।

शंकर०—लोग धर्म का सम्मान करते हैं, इसमें संदेह नहीं, मगर उसी समय तक, जब तक उसके पास पैसे हैं। परन्तु इधर धर्म की जेब ख़ाली हुई, उधर लोगों की आँखें बदल गईं! आपने मेरा अभिप्राय समझ लिया?

शाम०—(मुस्कराकर) तुम्हारी बातें कोई माने या न माने, मगर तुम्हारी बातें हैं दिलचस्प।

शंकर०—एक दृष्टांत लीजिए। आपके पास चार आदमी अच्छे वस्त्र पहनकर और मोटर में बैठ कर आते हैं, और किसी आश्रम या अनाथालय या विद्यालय के लिए दान मांगते हैं। आप पांच-सात सौ रुपया दे देते हैं। मगर जब आपके पास कोई ब्राह्मण नंगे-पाँव, नंगे-सिर, फटी-पुरानी धोती पहने आता है, तो पहले तो महाराज! आपके दरबान उसे घर में घुसने ही नहीं देंगे। और फिर अगर उनका दिल ग़रीब की मिन्नत-समाजत से पिघल गया, और उन्होंने कृपा करके उसे आपकी सेवा में उपस्थित होने का अवसर दे दिया, तो भी आप उसे क्या दे देंगे? दो-चार रुपये। और वह भी उपेक्षा से। मैं पूछता हूं, यह क्यों? मांगने दोनों आए थे, धर्म दोनों थे, ज़रूरत दोनों की सच्ची थी।

शाम०—(दिलचस्पी लेते हुए) कहे जाओ, मैं सुन रहा हूं।

शंकर०—मगर पहले आदमियोंको आपने सम्मान भी दिया, धन भी दिया। दूसरे आदमी को न सम्मान दिया, न धन दिया।

यह क्यों! केवल इसलिए, कि पहली अवस्था में धर्म कोट-पतलून पहनकर आया था, और मोटरमें बैठकर आया था। दूसरी अवस्था में धर्म नंगे-पांव आया था, और पैदल चलकर आया था। गोया पहला धर्म ग़रीब था, दूसरा धम अमीर था।

शाम०—(मुस्कराकर) यह तो तुमने एक नई बात कह दी। मगर यार, यह नई बात है सोलह आने सच।

शंकर०—आज आप अमीर हैं, आपके हाथ में भाईका कामकाज है, आपके पास रुपया पैसा है। आप का सभी मान करते हैं। कल आप ग़रीब हो जाएं, तो कोई आपकी बात भी न पूछेगा, कोई आपकी तरफ़ आँख उठाकर भी न देखेगा, कोई आपको देखकर भी न देखेगा।

शाम०—मगर मन का तो संतोष रहेगा मेरे पास।

शंकर०—सोलहों आने सच! मगर मुश्किल यह है, कि यह मन का संतोष आज-कल के युग में किसी के काम नहीं आता।

[शामलाल एक पैंसिल के साथ खेलता है, और कुछ सोचता है।]

शंकर—और महाराज, मेरी तो यह धारणा है, कि आज-कल यह मन का संतोष भी चाँदी-सोने के तोल बिकता है। जिसके पास चाँदी-सोना नहीं, उस के पास संतोष कहां? ज़रा सोचकर जवाब दीजिए। मेरी बात में ज़ोर है।

शाम०—(गम्भीरता से) मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता।

शंकर०—बहुत अच्छा!

शाम०—तुम्हारी युक्तियों में बल है, मगर इनमें सार नहीं। और जिसमें सार नहीं है, उसमें कुछ भी नहीं है।

शंकर०—मगर........

शाम०—भाई साहब ऐसा कभी नहीं कर सकते और देख लेना, वह ऐसा कभी नहीं करेंगे।

शंकर०—मैं तो चाहता हूं, ऐसा ही हो। मुझे इससे दुःख थोड़ा ही होगा। भगवान तुम्हारी कामना पूरी करे।

शाम०—और मुझे विश्वास है, ऐसा ही होगा। मैं अपने भाई को तुमसे ज़्यादा जानता हूं—तुमने उन्हें दूर से देखा है, मैंने उन्हें पास से देखा है। तुम उन्हें कभी कभी देखते हो, मैं उन्हें हर रोज़ देखता हूं।

शंकर०—(उठकर जाने को तैयार होते हुए) मगर कई चीज़ें ऐसी भी हैं, जो पास से दिखाई नहीं देतीं। और हर रोज़ देखने से उनकी महत्ता मर जाती है।

शाम०—(पाँव फैलाकर बैठते हुए) मैं पूछता हूँ, तुम यह विष मेरी खोपड़ी में क्यों भरना चाहते हो?

शंकर०—(जाते जाते रुककर) श्रीमानजी! मैं आपकी खोपड़ी में विष नहीं भरना चाहता, मैं आपको, और आपके भविष्यको विनाश से बचाना चाहता हूं। आपको याद है आपने मेरे साथ दो बार भलाई की है। मैं आपको उसकी क़ीमत देना चाहता हूं। मेरे सिर पर आपका बोझ है।

शाम०—मगर मुझे अब भी विश्वास नहीं होता, कि भाई साहब मेरे साथ ऐसा अन्याय कर सकते हैं।

शंकर०—इसका कारण यह है कि आप सीधेसाधे हैं। और जो सीधा होता है, उसे छल-कपट दिखाई नहीं देता।

शाम०—(क्रोध से) मैं सीधा ज़रूर हूं, मगर मैं मूर्ख नहीं हूं। अगर वे मुझे मूर्ख समझते हैं, तो यह उनकी भूल है। उन्हें अपनी राय बदलनी पड़ेगी।

शंकर०—(बैठ कर) मेरा कहना केवल यह है, कि आप अपना प्रबंध कर लें। जो अपना घर सँभालकर रखता है वह चोर की शिकायत नहीं करता। जो बेपरवाही करता है, वह रोता है, और पछताता है।

शाम०—(सोचकर) देखो! क्या तुम मुझे कल मिल सकते हो किसी वक्त?

शंकर०—कहाँ मिलूं?

शाम०—यहीं मेरे घर में।

शंकर०—बहुत अच्छा! मैं उपस्थित हो जाऊंगा। अगर मेरी वजह से आपका भला हो जाए, तो मुझे खुशी होगी।

[शंकरदास विजयी ढंग से चला जाता है। शामलाल उठकर इधर-उधर टहलता है और सोचता है—शायद यह, कि उसे क्या करना चाहिए? कुछ देरके बाद वह फिर आकर अपनी कुरसी पर बैठ जाता है। और अपनी घड़ी की ज़ंजीर के साथ खेलने लगता है। इतने में उसकी स्त्री लाजवंती धीरे-धीरे आती है, और उसकी कुरसी के पीछे खड़ी हो जाती है। शामलाल चुप चाप उसी तरह अपने विचार में निमग्न रहता है। जैसे उसने अपनी स्त्रीको देखा ही नहीं है।]

लाजवंती—आज यह महात्मा जी इस तरह समाधि लगाए क्या सोच रहे हैं?

शाम०—(मुस्करा कर) महात्माजी कुछ नहीं सोच रहे।

लाजवंती—(सामने आकर) महात्माजी झूठ बोल रहे हैं।

शाम०—मानो, तुम मेरे मन का हाल भी जान सकती हो ? तो बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ।

लाज०—मैं यह नहीं बता सकती, कि आप क्या सोच रहे हैं ? मगर मैं यह बता सकती हूं, कि आप जो कुछ सोच रहे हैं, उसे मुझसे छिपा रहे हैं।

शाम०—हूं।

लाज०—और जो चीज़ छिपाई जाती है, वह अच्छी नहीं होती।

शाम०—(उसी तरह अपनी घड़ीकी ज़ंजीर को अंगुली के गिर्द घुमाते हुए) लाज ! आज मैं चिन्ता में हूं, और मेरी चिन्ता बहुत बड़ी है। मैं सोच रहा था।

लाज०—(साथ की कुरसी पर बैठकर और पति से ज़ंजीर छीनकर) बताइए, क्या सोच रहे थे आप ?

शाम०—मैं सोच रहा था, अगर आज भाई साहब मुझे नौकरी से जवाब दे दें, तो मैं क्या करूँ ?

लाज०—(ज़ंजीर लौटाते हुए) ऐसी बातें सोचने से तो यही अच्छा है, कि आप अपनी ज़ंजीर के साथ खेलते रहें।

शाम०—(चिन्तानिमग्न) अब तो मेरे लिए कहीं नौकरी मिलनी भी कठिन है। इस आयु में कौन नौकरी देगा मुझे ? सारी आयु तो भाई की गुलामी में गुज़ार दी।

लाज०—मगर आपको उनपर संदेह कैसे हो गया ? आप तो कहा करते हैं, कि ऐसा भाई दुनिया भर में किसी का न होगा। आप तो कहा करते हैं, कि आपका भाई भाई नहीं, देवता है।

शाम०—(ठंडी आह भर कर) शायद यह मेरी भूल थी।

लाज०—(गम्भीरता से) बात क्या है ?

शाम०—बात यह है, कि भाई साहब ने अपना दान-पत्र लिखा है, कि उनके बाद उनकी सारी सम्पत्ति दिलीप को मिले, मुझे कुछ न मिले। यह समाचार मुझे अभी अभी मिला है।

लाज०—और आपने इस पर विश्वास कर लिया है ?

शाम०—और क्या करूँ ?

लाज०—भगवान् पर भरोसा रखकर अपना काम करते जाइए।

शाम०—(हैरान होकर) क्या कह रही हो तुम ?

लाज०—आपके भाई साहब भाई हैं, क़साई नहीं हैं, जो हमारे गले पर इस तरह छुरी चला देंगे। और मैं तो इससे भी आगे जाने को तैयार हूँ। अगर वह अपनी सारी जायदाद अपने पुत्रको देना चाहते हैं, तो इसमें अनर्थ ही क्या है ? हम काम करते हैं, वेतन लेते हैं। और वेतन कम नहीं है। हम शिकायत क्यों करें ?

शाम०—(क्रोध से) तो तुम्हारा यह ख्याल है, कि मैं जो दिन-रात बैलके समान काम करता हूं, उसका पुरुस्कार केवल मेरा वेतन है ? यह ख्याल तुम्हारा हो सकता है, मेरा नहीं हो सकता।

लाज०—(शांति से) और क्या आपका यह ख्याल है कि आप जो काम करते हैं, वह अपने भाई पर उपकार करते हैं ? पाँच सौ रुपया महीना मामूली वेतन नहीं है।

शाम०—तुम्हारे लिए बहुत होगा, मेरे लिए बिलकुल कम है।

लाज०—भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा है........

शाम०—रहने दो। मैं तुम्हारी गीता नहीं सुनना चाहता।

लाज०—यह और भी बुरा! (कुछ देर चुप रहने के बाद) अच्छा एक बात पूछूँ! क्या आपने उस आदमी को फिर बुलाया है? या उसने फिर आने का वादा किया है?

शाम०—(सोचकर) हां किया है।

लाज०—मैं कहती हूं, उससे न मिलिए! वह आदमी बुरा है।

शाम०—मगर बुरे आदमी से मिलने में क्या हानि है?

लाज०—मैंने आज ही एक किताबमें पढ़ा है, कि बुराई आदमीको पहले अजान आदमी के समान मिलती है और हाथ बांधकर नौकर की तरह उसके सामने खड़ी हो जाती है। फिर मित्र बनती है, और निकट आ जाती है। फिर मालिक बनती है, और आदमी के सिर पर सवार हो जाती है और उसको सदा के लिए अपना दास बना लेती है। आदमी उसके चुंगल में तड़पता है।

शाम०—यही तो स्त्रियों में ऐब है। जो कुछ पढ़ती हैं, उसे गिरह में बांध लेती हैं।

लाज०—तो क्या पुरुषों का यही गुण है, कि जो कुछ पढ़ते हैं, उसे भूल जाते हैं।

शाम०—मैं तुम्हारे साथ तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। मैं जानता हूं मुझे क्या करना चाहिए।

लाज०—मगर इतना सोच लो, कि वह आदमी काले साँप से भी भयानक है। इसलिये उससे मिलना काले साँपके साथ खेलना है। कहिए, नहीं मिलूंगा।

शाम०—ज़रा सुन तो लो—

लाज०—(हुक्म देते हुए) कहिए, नहीं मिलूंगा।

शाम०—(संकोच के साथ) अच्छा! नहीं मिलूंगा बाबा नहीं मिलूंगा। और क्या हुक्म है?

लाज०—(मुस्कराकर) और कोई हुक्म नहीं। अब बेशक आप अपनी ज़ंजीर के साथ खेलें।

[टेलिफ़ोनकी घंटी बजती है, शामलाल उठकर दूसरे कमरे में चला जाता है। लाजवंती भी स्थिति पर सोचती हुई अंदर चली जाती है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—शंकरदास का घर

समय—दुपहर

[शंकरदास और उसका मित्र दुर्गादास]

शंकरदास—मेरी बात का जवाब दो। तुम्हें रुपए की ज़रूरत है?

दुर्गादास—अरे भाई! तुम ज़रूरत कहते हो, मैं कहता हूं, अगर मुझे रुपया न मिला, और मैंने रायबहादुरका क़र्ज़ न चुका दिया, तो शायद रायबहादुर मुझपर नालिश कर दें, शायद मेरा मकान बिक जाए, शायद मैं कहीं मुंह दिखाने के योग्य भी न रहूं। मैं इस समय विनाश के किनारे पर खड़ा हूं।

शंकर०—तो मेरे साथ मिल जाओ, दिनोंमें मालामाल हो जाओगे। विनाश दूर चला जाएगा।

दुर्गा०—मगर मेरा मन कहता है, कि यह पाप है।

शंकर०—भाई मेरे! संसार में ग़रीबी सबसे बड़ा पाप है। इस पाप से बचने के लिए जितने भी पाप कर लो, सब पुण्य हैं। ग़रीब आदमी ज़रा सी भूल करता है, तो समाज अपनी सारी शक्तियां इकट्ठी करके उसके विरुद्ध खड़ा हो जाता है। अमीर आदमी पाप भी कर ले, तो समाज उसे कुछ नहीं कहता। मानो पाप केवल ग़रीब करता है। बल्कि ग़रीब जो कुछ करता है, वह पाप है। बल्कि ग़रीबी संसार का जीता-जागता पाप है। हर आदमी को इस पापसे बचना चाहिए।

दुर्गा०—(उठकर और हाथ बाँधकर) अच्छा नमस्कार !

शंकर०—(आश्चर्य से) मेरी युक्तियों का यही उत्तर है तुम्हारे पास ?

दुर्गा०—मुझे रुपए की ज़रूरत है, मगर पाप के रुपए की ज़रूरत नहीं। मैं पापसे डरता हूं।

शंकर०—सोच लो। मेरी आँखें तो वह दिन सामने देख रही हैं जब तुम्हारा नाश हो जाएगा, और दुनिया तुमपर हँसेगी।

दुर्गा०—किसी को नाश करने से यह कहीं अच्छा है, कि आदमी अपना आप नाश कर ले।

[दुर्गादास चला जाता है। शंकरदास टहलता है। इतने में शामलाल प्रवेश करता है।]

शाम०—नमस्ते।

शंकर०—मैं आपकी तरफ़ जाने ही वाला था। (कुरसी की तरफ़ इशारा करके) बैठिए।

शाम०—(बैठकर) देखो शंकरदास! मैं मानता हूं, कि तुम जो

कुछ कहते हो, मेरे भले के लिए ही कहते हो। मगर फिर भी—मैंने निश्चय किया है, कि मैं चुप रहूँ। मेरा कर्तव्य मेरे साथ, भाईका अन्याय भाईके साथ। जो जैसी करेगा, वैसी भरेगा।

शंकर०—(सिर हिलाकर) मैं समझ गया, यह आपका नहीं, आपकी स्त्री का निश्चय है।

शाम०—क्या मतलब ?

शंकर०—ऐसी धर्म की बातें स्त्रियाँ ही किया करती हैं। उन्हीं के पास धर्म रहता है। वही धर्मको अपना .खून पिला पिलाकर पालती हैं।

शाम०—यह तो ठीक है।

शंकर०—श्रीमान् जी! स्त्री हँसने-खेलने की चीज़ है। मन बहलाने की चीज़ है। प्यार करने की चीज़ है? मगर सलाह-मशविरा करने की चीज़ नहीं है। जो उनकी राय पर चलता है, वह संसारमें कभी उन्नति नहीं करता। स्त्री आदमी की उन्नति नहीं चाहती।

शाम०—मेरा ख्याल है, दुनिया में पुरुष का सब से ज़्यादा भला चाहने वाली उसकी स्त्री ही है। जो स्त्रीकी राय पर चलता है, उसे कभी कष्ट नहीं होता। जो स्त्री की राय पर नहीं चलता वह नष्ट हो जाता है।

शंकर०—अगर आपकी स्त्री दया-धर्म की मूर्ति है, तो वह कभी आपको सलाह न देगी, कि आप ग़रीबों का लहू चूस-चूस कर मोटे होते जाएं? क्या वह आपसे कहेगी कि आप किसी का घर नीलाम करा लें? या जो कुछ उसके पास है, छीन लें! अर्थात् आप उनका कहा मानें, तो आपको अपना साहूकारा लपेटकर परे

रख देना पड़ेगा। क्योंकि साहूकारा धर्म की कसौटी पर कभी पूरा नहीं उतरता।

शाम०—(निरुत्तर होकर) यहां आकर तो मेरा मन फिर डाँवां-डोल होने लगा।

शंकर०—अगर आपकी जगह मैं होता, तो कुछ करके दिखा देता। मगर आप महात्मा हैं। महात्मा संसारमें कुछ नहीं करते।

शाम०—अच्छा बताओ, अगर मेरी जगह तुम होते, तो तुम क्या करते ?

शंकर०—मेरी बात छोड़िए! मैं तो अपने भाईके बेटे को कुछ दिनों के लिए ग़ायब ही करा देता। श्रीमान् जी की आँखें खुल जातीं, होश ठिकाने आ जाते, और मेरे लिए मैदान साफ़ हो जाता। बोलिए, आप कर सकेंगे यह ?

शाम०—मैं तो मर जाऊं, जब भी यह न कर सकूं। मेरे लिए यह असंभव है।

शंकर०—मुझे पहले ही मालूम था। क्योंकि इसके लिए साहस की ज़रूरत है, और साहस आपके पास है नहीं। आपके पास प्यार है, और प्यार आदमी की सबसे बड़ी निर्बलता है। क्या आपने दुनिया में किसी प्यार करने वाले आदमी को ऊँचा उठते, बलवान होते, शासन करते देखा है ? (शामलाल शंकरदासकी तरफ़ देखता है।) कम से कम मैंने तो प्यार को सदा रोते, गिड़गिड़ाते, शक्ति के हाथ बिकते और उसके पाँव की ठोकरें खाते देखा है। इसलिए अगर आप अपने मन में भाई का प्यार पालना चाहते हैं, तो संसारमें ठोकरें खाने के लिए तैयार हो जाइए। और अगर आप सुख, सुषमा और सम्मानका

जीवन बिताना चाहते हैं, तो आपको संसार का झूठा प्यार त्यागना होगा। त्याग के बिना दुनियामें कोई चीज़ नहीं मिलती।

शाम०—(सोचकर) तुमने कहा है, अगर मेरी जगह तुम होते, तो रायबहादुर के बेटे को ग़ायब कर देते। मगर मैं चाहूं, जब भी यह काम नहीं कर सकता।

शंकर—मगर आपको यह काम खुद करनेकी ज़रूरत ही क्या है? आप आज्ञा दे दें, काम हो जाएगा।

शाम०—मगर बच्चे को ज़रा भी हानि न पहुँचेगी?

शंकर०—मजाल है।

शाम०—और वह मज़ेमें रहेगा?

शंकर०—बराबर।

शाम०—और मैं जब चाहूंगा, वह मुझे वापस मिल जाएगा?

शंकर०—क्यों नहीं?

शाम०—और यह भेद किसीको मालूम न होगा?

शंकर०—क्या यह भी सम्भव है?

शाम०—एक बात का ख़याल रहे, तुम्हारी ज़रा सी बेपरवाही मेरी जान पर बन जाएगी।

शंकर०—मैं स्वयं मर सकता हूँ, मगर मुझसे ऐसी बेपरवाही नहीं हो सकती।

शाम०—(संकोच से) तो....मेरी तरफ़ से आज्ञा है। (जेब से नोट निकालकर) एक हज़ार रुपया—बाक़ी फिर——मगर सावधान! यह बात कहीं बाहर न निकल जाए।

शंकर०—आप निश्चित रहें, यह बात कभी बाहर न निकलेगी।

तीसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का दफ्तर

समय—साँझ

[रायबहादुर हीरालाल अपने दफ्तर में एक शानदार मेज़ के सामने बैठे हैं। सामने एक कुरसी पर उनका ऋणी दुर्गादास बैठा उनकी मिन्नत-समाजत कर रहा है।]

दुर्गादास—नहीं रायबहादुर ! मैं बिलकुल बरबाद हो जाऊँगा।

हीरालाल—(बेपरवाही से) मगर इसमें मेरा क्या दोष है।

दुर्गा०—दोष तो मेरा ही है सरकार ! मगर फिर भी....

हीरा०—(पैंसिल उठाकर) एक साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया। दूसरा साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया। तीसरा साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया। अब तुम ही बताओ, मैं क्या करूं ? और कितनी देर चुप रहूं ?

दुर्गा०—एक बार और अवसर दे दीजिए।

हीरा०—(घंटी बजाते हुए) बार बार तो परमात्मा भी अवसर नहीं देता। (दरबान के आने पर) ज़रा शामलाल को भेज दो।

[दरबान का प्रस्थान]

हीरा०—रुपए का काम रुपएसे होता है, बातोंसे नहीं होता।

दुर्गा०—बाप-दादों के समय का एक छोटा सा झोंपड़ा है, मैं उसी में पैदा हुआ, उसीमें पला, उसीमें बड़ा हुआ। अब इस बुढ़ापेमें कहां ठोकरें खाऊंगा ? छोटे छोटे बच्चे हैं, झोंपड़ा छिन गया, तो वह कहां रहेंगे ? रोएंगे, तड़पेंगे, मारे मारे फिरेंगे।

हीरा०—यह सोचना मेरा काम नहीं है। (शामलाल का प्रवेश) देखो, इसकी तरफ़ कितना रुपया निकलता है ?

[शामलाल खिड़की के पास जाकर मेज़ से रजिस्टर उठाता है, और उसे खोलकर देखता है।]

दुर्गा०—रायबहादुर ! मैं ग़रीब हूं, मगर मैं बेईमान नहीं हूं। मैं सच कहता हूं, मैं आपका पैसा पैसा चुका दूंगा। मुझे मौक़ा दीजिए।

हीरा०—(शामलालसे) कितना रुपया है इसकी तरफ़ ?

[शामलाल रजिस्टर लिए आता है]

शाम०—एक हज़ार सात सौ बारह रुपया, ग्यारह आना।

हीरा०—(एक एक शब्दपर ज़ोर देते हुए) एक हज़ार सात सौ बारह रुपया, ग्यारह आना। अगर मैं नालिश न करूं, तो यह रुपया मुझे कैसे मिल सकेगा ? बोलो।

दुर्गा०—मैं हर महीने की पहली तारीख़को आकर पचीस रुपए दे जाया करूंगा। और इसमें कभी नाग़ा न होगा।

हीरा०—पचीस रुपए महीना ? गोया अगर आज से व्याज बिलकुल बंद हो जाए, तो भी कहीं छः सालमें जाकर तुम यह रुपया चुका सकोगे। (सिर हिलाकर) मुश्किल ! (शामलाल से) काग़ज़ वकील के पास भेज दो। और कोई रास्ता नहीं। मैं मजबूर हूं।

शाम०—बहुत अच्छा।

हीरा०—(दुर्गादाससे) मुझे अफ़सोस है, मगर मैं कुछ नहीं कर सकता।

दुर्गा०—मेरी इज़्ज़त आपके हाथ है, रायसाहब ! आप मुझे बचा लें, भगवान आपके जान-माल की रक्षा करेगा !

हीरा०—आदमी को रुपया-पैसा देना भगवान का काम है। उसकी रक्षा करना आदमी का अपना काम है। और मेरा ख्याल है, मैं जानता हूं, कि अपनी चीज़ों की कैसे रक्षा की जाती है।

[दुर्गादास निराश होकर उठता है, और चला जाता है। इतने में बाहरसे आया के चिल्लाने की आवाज़ आती है। आया "दिलीप" "दिलीप" कहकर चिल्ला रही है। यह आवाज़ पहले दूर से सुनाई देती है। इसके बाद निकट आती जाती है। हीरालाल घबरा कर खड़ा हो जाता है। बूढ़ी आया गिरती-पड़ती प्रवेश करती है, और द्वार के साथ लगकर खड़ी हो जाती है। हीरालाल घबरा कर उसके पास पहुँचता है।]

हीरा०—क्या बात है आया? क्या बात है?

आया—दिलीप नहीं मिलता!

हीरा०—क्या कहा तूने?

आया—(डरकर) दिलीप खो गया।

हीरा०—(घबराकर) तू कहां थी?

आया—(रुक रुक कर) मैं बगीचे में थी।

हीरा०—और वह कहां था?

आया—वह गेंद के साथ खेल रहा था।

हीरा०—(अधीरता से) अच्छा!

आया—उसने गेंद झाड़ियों में फेंक दिया। मैं लेने गई—

हीरा०—फिर!

आया—लेकर लौटी, तो दिलीप का कहीं पता न था।

हीरा०—अपने कमरे में होगा–अपनी चाची के पास होगा–साथ की कोठी में होगा–दरबानों के पास होगा। जाकर देख, वह मिल जाएगा। इतना घबरानेकी क्या बात है?

आया—(रोकर) कहीं भी नहीं है। मैं सब जगह देख आई हूं, रायसाहब। वह कहीं भी नहीं है।

हीरा०—(और भी घबराकर ऊँची आवाज से) सरजू! रामू! बंसी! मूला! (सब नौकर आकर सामने खड़े हो जाते हैं।)जाओ! जाकर दिलीप को ढूंढो। (एक नौकरसे) तुम सब कोठियों में देखो। (दूसरेसे) तुम छावनी की तरफ़ जाओ। (तीसरे से)तुम शरह की तरफ़! (चौथे से) तुम स्टेशन की तरफ़!

[सब नौकर चले जाते हैं। हीरालाल कुछ देर टहलते हैं फिर शामलाल की तरफ़ देखते हैं।]

हीरा०—(शामलाल से) और तुम यहां खड़े मेरा मुंह क्या देख रहे हो? जाओ जाकर पुलीस को ख़बर दो।

[हीरालाल जल्दी से चला जाता है। शामलाल अवाक् रह जाता है। वह कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहता है। इसके बाद मेज़ के पास जाकर उसके दराज़ बंद करता है, और बाहर जाना चाहता है। इतने में लाजवंती आकर उसके सामने खड़ी हो जाती है। अब लाजवंती हाँप रही है। शाम-लाल काँप रहा है।]

लाज०—दिलीप खो गया?

शाम०—(साहस बटोर कर) हां, तुमने भी सुन लिया!

लाज०—सुन लिया, और सुनकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने मुझे आकाश से धरती पर पटक दिया है, जैसे किसी ने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी है, जैसे किसी ने मेरे दिल का गर्व छीन लिया है। मैं समझती थी, मैंने आपको बचा लिया है! मगर नहीं, मालूम होता है, ज़हर चढ़ चुका है। और मेरे पास इस का तोड़ नहीं।

शाम०—लाज! तुम क्या कह रही हो?

लाज०—मैं यह कह रही हूं, कि दिलीप के गुम होने में आप का हाथ है, और मैं कह रही हूं, कि आपने, साथ न जाने वाले धन के लोभ में, साथ जाने वाला धर्म बेच दिया है। और आपने अपना मन काला कर लिया है।

शाम०—पहले मेरी बात सुनो—

लाज०—(ऐसे जैसे कोई किसी को आज्ञा दे रहा हो।) जाओ! जाकर दिलीप को लौटाकर लाओ। नहीं तो तुम्हारा भाई उसके वियोगमें रो-रोकर पागल हो जाएगा, तुम्हारी स्त्री तुम से घृणा करेगी और तुम्हारा दिल तुम्हें हर समय धिक्कार करता रहेगा।

शाम०—लाज मैं सच कहता हूं, इसमें मेरा हाथ नहीं है। मुझ पर विश्वास करो।

लाज०—आप झूठ बोलते हैं? आपका मुंह कह रहा है, कि यह सब आपने किया है। आपकी आंखें कहती हैं, कि इसमें आपका हाथ है।

शाम०—मैं कहता हूं—

लाज०—(बात काट कर) मैं पूछती हूं, क्या दिलीप जीता है? क्या वह हमारे पास लौट आएगा? क्या हमारे घर की शोभा, हमारे मन की शांति, हमारी निश्चिन्तता की नींद हमें फिर से मिल जाएगी? बोलो बोलो! क्या तुम जो मुझ से बहुत दूर चले गए मालूम होते हो, फिर मेरे निकट आ जाओगे?

शाम०—लाज! यह केवल तुम्हारा भ्रम है! मैं आदमी हूं, मैं पशु नहीं हूं।

लाज०—इस समय तुम पशु से भी बुरे हो।

शाम०—(क्रोध से) मैं कहता हूं, क्या तुम जानती हो, तुम क्या कह रही हो? तुम मुझे गालियां दे रही हो।

लाज०—(सुना अनसुना करके) अगर तुम्हें अपने देवतुल्य भाई का ख्याल नहीं है, तो मेरा ही ख्याल करो—मैं भी दिलीप को अपने बच्चे के समान चाहती हूं। दिलीप मेरा भी बच्चा है।

[भूमि पर गिर जाती है।]

शाम०—(प्रभावित होकर) उठो लाज ! मेरा ख्याल है, अभी तीर कमान से न निकला होगा। (तेज़ी से प्रस्थान)

दृश्य परिवर्तन

स्थान—जंगल

समय—रात

[शंकरदास मोटर में दिलीप को लिए जा रहा है। मोटर एक दो सड़कों पर जाती दिखाई देती है, इसके बाद आँखों से ओझल हो जाती है।]

चौथा दृश्य

स्थान—काशी का घाट

समय—सांझ से कुछ देर पहले

[काशी के घाट पर सूरदास इकतारे के साथ गा रहा है। यात्री आते हैं, सुनते हैं, पैसा दो पैसा देते हैं, चले जाते हैं। शंकरदास दिलीप को उठाए आता है, और सूरदास के सामने से गुज़र कर दूसरी तरफ़ निकल जाता है। सूरदास अपने गाने में निमग्न है, लोग सुननेमें मग्न हैं। चारों तरफ़ आनंद बरस रहा है।]

गीत

बाबा ! मनकी आँखें खोल !

दुनिया क्या है एक तमाशा !
चार दिनों की झूठी आशा !
पल में तोला, पल में माशा !

ज्ञान-तराजू लेकर पगले, तोल सके तो तोल। बाबा....

झूठे हैं ये दुनिया वाले,
तन के उजले, मन के काले,
इनसे अपना आप बचाले,

रीत कहां की ? प्रीत कहां की ? कैसा प्रेम किलोल। बाबा...

[यात्री बातें करते हैं।]

एक यात्री—काशी में इसके जोड़ का गाने वाला दूसरा नहीं है। खूब गाता है।

दूसरा—गाता क्या है ? गंगा के तीर पर दूसरी गंगा बहाता है।

तीसरा—न भैया ! यह गीत नहीं गाता, अज्ञान के अंधकार में सोई हुई आत्माओं को जगाकर प्रेम, प्रकाश और पवित्रता के शिखर पर खड़ा कर देता है। यह गीत नहीं गाता, आत्मा के जनम जनमके बंधन काटके रख देता है।

चौथा—इसके गीत सुनकर तो ऐसा मालूम होता है, जैसे हम कमल के फूलों, चाँद की किरणों, और स्वर्ग के सुपनों के देश में पहुंच गए हैं। इसके गीत गीत नहीं हैं, अमृतकी फुहारें हैं।

पहला—भई ! ज़रा सुनो ना। बातें फिर कर लेना।

दूसरा—सुनो भाई सुनो।

[सूरदास गाता है, बाटलीवाला और जयकृष्ण आकर सुनते हैं ।]

गीत

मतलब की सब दुनियादारी,
मतलब के सारे संसारी,
तेरा जग में को हितकारी ?

तन मन का सब ज़ोर लगाकर नाम हरि का बोल । बाबा....

बाटलीवाला—(धीरे से) क्या राय है ?

जयकृष्ण—आप ठीक कहते थे । यह आदमी गाता नहीं है, समाँ बांधता है, हवा बांधता है, दिल बांधता है ।

बाटली०—अगर यह सूरदास हमारी कम्पनी में आ जाए, और हमारी कम्पनीमें काम शुरू कर दे, तो कैसा रहे ? ज़रा सोचो ।

जयकृष्ण—(संदेहपूर्ण स्वर में) मगर मान जाएगा यह ?

बाटली०—(आगे बढ़ते हुए) रुपए में बड़ी शक्ति है । (सूरदास के कंधे पर हाथ रख देता है, सूरदास चौंकता है) भाई ! खूब गाते हो । क्या बात है ? जो सुनता है, झूमने लगता है । जो सुनता है, मस्त हो जाता है । जो सुनता है, अपना आप भूल जाता है ।

सूरदास—(इकतारा भूमिपर रखकर) आप कौन हैं ?

बाटली०—मैं कालीदास नाटक कम्पनी का मालिक हूं ।

जयकृष्ण—तुमने इनका नाम तो सुना होगा सूरदास ! यह बहुत बड़े आदमी हैं ।

सूरदास—जरूर होंगे भाई । मगर मैं अंधा हूं; मुझे ऐसे महापुरसों से मिलने का औसर कब मिलता है ? मैं तो यहीं पड़ा रहता हूं अपनी गरीबी में ।

बाटली०—सूरदास ! परमात्मा ने तुम्हें इतना सुरीला गला, और ताल सुर का इतना अच्छा ज्ञान दिया है, तो फिर भिक्षा क्यों मांगते हो ? अगर मेरी कम्पनी में आ जाओ, तो चार दिनों में कहीं से कहीं जा पहुंचो। चार दिनों में काया पलट हो जाए।

जयकृष्ण—क़िसमत जाग उठे सूरदास ! सैंकड़ों कमाने लगा। हज़ारों कमाने लगो।

सूरदास—मगर भाई ! मैं अंधा हूं, और गरीब हूं, और दुनिया में अकेला हूं। मेरी दो आने में गुजर हो जाती है। मुझे हजारोंकी क्या दरकार है, और मैं नौकरी-चाकरी करके क्या करूंगा ? मैं यहीं खुश हूं।

बाटली०—सूरदास ज़रा सोच लो। यहां भीख मांगते हो, वहां अपनी कमाई खाओगे ! (जयकृष्ण की ओर देखता है।)

जयकृष्ण—(बाटलीवाला का अभिप्राय समझकर) कितना अंतर है ? ज़मीन से आसमान पर जा चढ़ोगे। भिक्षा मांगना मरने से भी बुरा है।

सूरदास—मगर मैं तो भिक्खा नहीं मांगता मेरे भाई !

बाटली०—तुम भिक्खा नहीं माँगते, तुम्हारे गीत भिक्खा मांगते हैं। यह और भी बुरी बात है। मांगना छोड़ो, चाकरी करो। चाकरी मांगने से हज़ार गुना अच्छी।

सूरदास—तो चाकरी करके क्या हो जाएगा ? अब यहां घाट पर बैठकर मांगता हूं, फिर आपके नाटक में खड़ा होकर मांगूंगा। बात तो एक ही है।

बाटली०—नहीं सूरदास ! वहां जो तुम्हारा गीत सुनना चाहेगा, उसे टिकट ख़रीदना होगा।

सूरदास—अच्छा !

जयकृष्ण—टिकट ख़रीदने में और भिक्षा देने में आकाश-पाताल का अंतर है सूरदास! ज़रा सोचकर देखो।

सूरदास—और जिसके पास टिकट खरीदने को दाम न हों, वह क्या करे?

बाटली०—वह अपने घर बैठे, उसे तुम्हारा गीत सुननेका क्या अधिकार है? दुनियामें जिस तरह हर वस्तु की क़ीमत है उसी तरह तुम्हारे गाने की भी क़ीमत है।

सूरदास—मगर महाराज! सूरज की धूप और चाँद की चाँदनी और बादल की बरखा की क्या कीमत है? बाग में फूलों की डालियों पर बैठकर जो पखेरू मन को मोह लेने वाले गीत गाते रहते हैं, उनकी क्या कीमत है? हवा जीवन देती है, उसकी क्या कीमत है,

बाटली०—तुम तो बहुत दूर चले गए सूरदास! मेरा मतलब यह था, कि तुम रागी हो, रागी बनो। तुम्हें भक्त बनकर क्या मिलेगा?

जयकृष्ण—ज़रा सोचकर जवाब दो, तुम्हें भक्त बनकर क्या मिलेगा?

सूरदास—(मुस्कराकर) रागी बनकर रुपया मिलेगा, भक्त बनकर भगवान मिलेगा। और बाबा, भगवान बड़ी चीज़ है। भगवान के सामने सब तुच्छ है।

बाटली०—(निराश होकर) तो यह कहो कि तुम नौकरी नहीं करना चाहते?

सूरदास—भैया! जिसको ईसर घर बैठे भेज दे, उसे इस असार संसार के मोह-माया में फँसने की क्या दरकार है? मैं यहां घाट पर अच्छा हूं। मुझे नौकरीकी दरकार नहीं।

जयकृष्ण—यह तुम्हारी मूर्खता भी है, बदनसीबी भी है।

बाटली०—(जाते जाते) यह आंखों का भी अंधा है, दिल का भी अंधा है। घर आई लक्ष्मीको ठुकराता है, किसी दिन रोएगा।

सूरदास—जगत में हर आदमी जात्री है, जिसके पीछे लोभ-तृसना का चोर लगा हुआ है। स्याना वही है, जो इस चोर से बचे और अपनी जात्राको खोटा न करे।

[दोनों चले जाते हैं। सूरदास मुस्कराकर अपना इकतारा सँभालता है और फिर गाने लगता है।]

गीत

तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
आज ज़रा सा फ़ितना है यह,
तू कहता है कितना है यह,
दो दिन में यह बढ़कर होगा मुंह-फट और मुंह ज़ोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
नींद में माल गंवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,
फिर पीछे कछु नाहीं बनेगा, लाख मचावे शोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।

[लोग सुनते हैं, पैसे फेंकते हैं, चले जाते हैं। कई साधु आकर सूरदास के पास बैठ जाते हैं। एक साधु सूरदास के हाथ में नारियल देता है। सूरदास इकतारा रख देता है, और नारियल पीने लगता है। साथ ही साथ बातें भी होने लगती हैं।]

एक साधु—सूरदास जी! हमें तो आज कुछ भी न मिला।

दूसरा—अरे महाराज! मिले कैसे? लोगों में दया-धर्म का सौक ही नहीं रहा।

तीसरा—पहले इसी कासीपुरी में मैं हर रोज सांझ के बखत दस

दस रुपए लेकर उठता था। अब दस पैसे भी नहीं मिलते। जमाना ही बदल गया। लोग आरिए बन गए।

चौथा—यही तो कलजुग के लच्छन हैं। गृहस्थी ऐस करते हैं, साधु-महात्मा भूखे मरते हैं। क्यों सूरदास? साधु-महात्माओं से तो गृहस्थी ही अच्छे।

सूरदास—(चिलम दूसरे को देकर) अरे भाई! गृहस्थी फिकर में पैदा होते हैं, फिकर में पलते हैं, फिकर में मर जाते हैं। तुम्हें क्या फिकर है? तुम उस आसरम में जाकर चार दिन न रह सको। यह जिन्दगी बड़ी अच्छी है महात्माजी।

पहला—नहीं महाराज! यह जिन्दगी नहीं, जिन्दगी का मजाक है। यह जिन्दगी नहीं, जिन्दगी का रोना है।

सूरदास—(क्रोधसे) तो जाओ, जाकर किसी रांड से सादी कर लो और ऐस मनाओ। जब तुम्हारे मन की तृसना नहीं मिटी और लोभ नहीं गया, तो गेरुए बस्तर पहनना किस काम का? इससे तो चोरी भली। इससे तो डाका भला।

पहला—सूरदास! तुम तो गुस्सा हो गए। परंतु बताओ, जब दो जून खाने को भी न मिले, तो क्या करें? पेट पर पत्थर तो बांधा नहीं जाता हमसे। पेट हमसे मांगता है, हम किससे मांगें?

सूरदास—परमेसर से मांगो। परमेसर देगा। मगर तुम तो परमेसर से मांगते ही नहीं, आदमी से मांगते हो।

दूसरा—तुम भी लोगों के सामने गाते हो, परमेसर के सामने क्यों नहीं गाते? खाने को मिल जाता है, तो चले हैं उपदेस सुनाने। भूखे मरो तो चार दिनों में होस ठिकाने आ जाएं। चार दिनमें यह सब बातें भूल जाओ। पेट भरता है, तो ज्ञान सूझता है।

सूरदास—भाई ! हम तो परमेसर ही के सामने गाते हैं, सुनने को जो कोई सुन जाए । अपने राम को क्या ? लो यह पैसे आपस में बांट लो । (साधु पैसे बांटते हैं ।) ठीक ठीक बांटना और सबको बराबर देना ।

तीसरा—सूरदास ! तुमने कुछ कल के लिए भी रखा या नहीं ?

सूरदास—भाई ! जिस मालिक ने आज दिया है, वह कल भी देगा, साधु के लिए कल की फिकर करना बुरा, लोभ बुरा, बचाकर रखना बुरा ।

[एक साधनी का भागते भागते प्रवेश]

साधनी—सूरदास ! ओ सूरदास ! !

सूरदास—आओ माई बैठो !

साधनी—नहीं सूरदास ! बैठने की बेला नहीं । आज वहां एक पेड़ तले किसी का बच्चा रह गया है । बहुतेरी खोज की है, मां-बाप का कुछ पता ही नहीं लगता । परमेसर जाने, कहां चले गए ? बताओ अब क्या करें ?

सूरदास—(अंधी आंखें झपककर) वह बच्चा तो रो रहा होगा !

साधनी—रोता तो ऐसे है, कि तुमसे क्या कहूं ? किसी से चुप नहीं होता । किसी के पास नहीं जाता । चारों तरफ़ देखता है, और मुंह फुलाकर रोता है ।

सूरदास—मेरे पास आ जाए, तो एक छिन में चुप हो जाए । क्या मजाल, जो जरा भी रो जाए । क्या मजाल, जो चूं भी कर जाए ।

[एक साधु दिलीप को लिए आता है । दिलीप ज़ोर ज़ोर से रो रहा है, और हाथ से निकला जाता है ।]

साधु—तो तुम ही जतन कर देखो सूरदास, हम में तो यह बूता नहीं । सारे जतन कर कर के हार गए । लो पकड़ो इसे ।

सूरदास—लाओ भैया ! मैं चुप करा दूं इसे।

[सूरदास दिलीप को लेकर कंधे से लगा लेता है, और उसके सिर के बालों में प्यार से अंगुलियां फेरने लगता है। दिलीप पहले रोता है. फिर चुप हो जाता है, और अपना सिर सूरदासके कंधे पर रख देता है। सारे लोग हैरान होते हैं। सूरदास .खुश होता है।]

सूरदास—अब बोलो, चुप हुआ या नहीं। कहते थे, किसी की सुनता ही नहीं। अरे बाबा ! प्यार की पुकार तो पसु-पक्खी भी सुनते हैं, ढ़ोर डंगर भी सुनते हैं। यह तो फिर भी आदमी का बच्चा है। लो अब जाकर इसके मां बाप को खोज लाओ। परेसान हो रहे होंगे। और इस की मां तो मरी जाती होगी।

साधुनी—सूरदास ! बहुत ढूंढ़ा है, कहीं पता नहीं लगता। देखो तुम एक काम करो। इसे अपने घर ले जाओ। जब इसके मां-बाप आएंगे, हम तुम्हारे पास भेज देंगे। यह बच्चा तुमसे सँभलेगा और किसी से न सँभलेगा।

सूरदास—मगर........

एक—अरे सूरदास, तू भी घबराएगा, तो इसे और कौन सँभालेगा ?

दूसरा—सूरदास ! यह काम तो तुम्हें करना ही होगा।

सूरदास—(विवशता से) अच्छा भैया ! जैसी तुम्हारी मरजी, वैसी मेरी मरजी। और क्या ?

[सूरदास दिलीप को लेकर चला जाता है। इतने में पुलीस के आदमी ज़ख्मी शंकरदास को उठाए लाते हैं, और शहर की तरफ़ चले जाते हैं। दो चार आदमी पीछे रह जाते हैं और बातें करने लगते हैं।]

एक—(दूसरे आदमी से) क्यों भाई ! तुम कुछ बता सकते हो, यह क्या हुआ है ?

दूसरा—अरे भैया, एक मुटरिया एक पेड़ से टकरा गई है, और क्या हुआ है ?

तीसरा—यह आदमी मर गया है, या अभी जीता है ?

दूसरा—(सिर हिलाकर) ना भाई ! मर गया । और अगर नहीं मरा, तो हस्पताल में जाकर मर जाएगा । बचना मुस्किल ।

चौथा—कोई परदेसी माल्रूम होता है ।

दूसरा—और यह भी माल्रूम होता है कि अमीर है । जेब से एक हज़ार के नोट भी निकले हैं ।

पहला—गाड़ी तो चूर चूर हो गई होगी ?

दूसरा—एकदम !

तीसरा—जाने इसकी आंखें कहां थीं ?

पहला—भाई मेरे ! जब बुरे दिन आते हैं, तो आंखें पहले बंद हो जाती हैं । आदमी देखता हुआ भी नहीं देखता । आंखें गईं, और आदमी मरा ।

[सबका प्रस्थान ।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—काशी के बाहर ग़रीबों के झोंपड़े

समय—रात

[एक जगह म्युनिसिपल कमेटी के लैम्प के नीचे कुछ ग़रीब लोग बैठे ताश खेल रहे हैं । दूसरी जगह एक आदमी बैठा हुक्का पी रहा है । कुछ परे एक बकरी बँधी है । एक स्त्री पानी का घड़ा लिए जा रही है । इतने में सूरदास दिलीप को उठाए आता है, और बाहर से पुकारता है ।]

सूरदास—(ऊंची आवाज़ से) कल्लो की मां ! ओ कल्लो की मां !! कहां मर गई तू ?

[कोई जवाब नहीं देता ।]

सूरदास—(फिर आवाज़ देता है ।) ओ कल्लो की मां ।

कल्लो की मां—(अपने झोंपड़े से जवाब देती है) क्या है सूरदास ? तुम्हारा खाना बना रखा है । जाकर खालो ! मुझे इस बखत क्या कहते हो ? मुझे काम है अपना ।

सूरदास—खाने की बात नहीं, कल्लो की मां ! जरा बाहर आओ ! बड़ा जरूरी काम है ।

[कल्लो की मां झोंपड़े से बाहर निकलती है ।]

कल्लो की मां—अब तुम बहुत तंग करने लगे सूरदास ! कहो क्या कहते हो ? (बच्चे को देखकर) अरे सूरदास, यह बच्चा किसका है ? और तुम इसे कहां से उठा लाए हो ?

सूरदास—उठा नहीं लाया कल्लो की मां ! गंगा के घाट पर पड़ा था । पता नहीं इसके मां-बाप कहां चले गए ? मैंने सोचा, चलो घर ले चलें । रात की बेळा घाट पर ठंडी होती है, साँड होते हैं, सियार होते हैं । यह मासूम अकेला वहां कैसे रहता !

कल्लो की मां—मगर तुम क्यों उठा लाए ? जाने कौन है, कौन नहीं है ? मुफत की बला ।

सूरदास—कोई भी हो, परमेसर का जीव तो है । और फिर एक ही रात की तो बात है । देखना, कल भोर होते ही इसके मां-बाप आ जाएंगे । ऐसे जरा से बच्चे को खोकर क्या किसी मांको, या बाप को नींद आ सकती है ? तड़फ रहे होंगे ! बच्चेका मोह बुरा ।

कल्लो०—अच्छा बाबा ! जो तुम्हारी खुसी (दिलीपको देखकर) मगर बच्चा है बड़ा सुंदर ! कैसी बड़ी बड़ी आंखें हैं । गोरा गोरा रंग है ! मुटर मुटर तकता है । (बच्चेसे) आ लल्लू मेरे पास आ जा ।

[बच्चे को लेना चाहती है, मगर सूरदास नहीं देता।]

सूरदास—कल्लो की मां! यह हमारा एक रात का पाहुना है। अपने घर में, राम जाने, इसकी खिदमत करने वाले कितने चाकर होंगे? राम जाने, वहां इसकी कितनी खुसामदें होती होंगी? जाकर इसके लिए थोड़ा सा दूध ले आओ। यह भी क्या याद करेगा, कि किसी अंधे फकीर के घर गया था। जाओ ले आओ।

[सूरदास जेब से पैसे निकालता है।]

कल्लो०—पर रात बहुत गुजर गई है। इस बखत दूध मिलेगा भी? मुझे तो सक है।

सूरदास—जरूर मिलेगा, कल्लो की मां जरूर मिलेगा। (पैसे देकर) तुम जाओ तो सही (दिलीप अपना कवच उतार कर फेंक देता है।) यह क्या? कल्लो की मां! इसने क्या फेंका है? जरा देखना!

कल्लो०—(कवच उठाकर) कवच है सूरदास, और सोने का है। (सूरदास को देकर) सँभाल कर रखो, यह बच्चा फेंक देगा।

सूरदास—(हाथ फैलाकर) ला दे दे मुझे।

[सूरदास कवच ले लेता है। कल्लो की मां चली जाती है। सूरदास दिलीप के सिर पर हाथ फेरता है, और उसे लेकर अपनी झोंपड़ी में चला जाता है।]

छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—रात

[रायबहादुर हीरालाल बीमार पड़ा है। सामने डाक्टर साहब बैठे हैं। एक तरफ़ शामलाल है। ज़रा परे हटकर लाजवंती घूँघट काढ़े खड़ी है।]

रायबहादुर—(पीड़ा की व्याकुलता से) शामलाल ! ओ-ओ-ओ शामलाल मेरा हाल बुरा है। (कराहता है।)

डाक्टर—घबराइए नहीं। (शामलाल से) वह छोटी शीशी उठा दीजिए मुझे।

[शामलाल शीशी दे देता है, डाक्टर दवा निकालता है। हीरालाल करवट बदलकर उसकी तरफ़ देखता है, और कहता है।]

रायबहादुर—डाक्टर साहब ! मेरे रोग की औषधि दिलीप है। उसे ला दीजिए, मैं ठीक हो जाऊंगा। नहीं तो (सिर हिलाकर) मेरा बुरा हाल होगा शामलाल।

शाम०—(पास जाकर) भैया ! धीरज धरो। पुलिस खोज कर रही है। आशा है, वह मिल जाएगा।

राय०—सभी समाचारपत्रों में विज्ञापन दे दो कि जो मेरे दिलीप का समाचार लाएगा, उसे दस हज़ार रुपया इनाम दिया जाएगा। बल्कि पंद्रह हज़ार, बल्कि बीस हज़ार।

शाम०—भैया ! मैंने विज्ञापन कल ही भेज दिया, आज छप गया है।

हीरा०—(शांत होकर) अच्छा।

[डाक्टर दवा पिलाना चाहता है। रायबहादुर उसे परे हटा देता है।]

राय०—क्या यह दवा पीने से मेरा दिलीप मेरे सामने आकर खड़ा हो जाएगा ? अगर नहीं, तो........डाक्टर साहब ! यह मन का रोग है, देह का नहीं। इसलिए....

[हीरालाल लेट जाता है।]

लाज०—(शामलाल को एक तरफ़ ले जाकर) शंकरदास का कुछ पता लगा या नहीं ?

शाम०—(सिर झुकाकर) नहीं।

लाज०—यह भी पता नहीं लगा कि वह कहां गया है ?

शाम०—(उसी तरह सिर झुकाए हुए) कुछ पता नहीं लगा।

लाज०—इनकी दशा तो बहुत ख़राब है। क्या करें ?

राय०—(आह भरकर) भगवान ! मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था, जो तूने मेरा दिलीप मुझसे छीन लिया। तू मेरा सब कुछ ले ले, सिर्फ़ मेरा दिलीप लौटा दे। मैं और कुछ नहीं चाहता। कुछ नहीं चाहता। न नाम, न दौलत, न शान। मुझे सिर्फ़ मेरा दिलीप लौटा दे।

[परदा गिरता है।]

सातवां दृश्य

स्थान—काशी की एक सड़क

समय—दुपहर

[कुछ साधु बातें कर रहे हैं।]

एक साधु—कितना बदल गया यह आदमी ?

दूसरा—एकदम बदल गया। अब यह सूरा वह पहले वाला सूरा कहां।

पहला—पहले जो कुछ पाता था, बाँट देता था। अब किसी को पैसा भी नहीं देता। सब समेटकर ले जाता है।

तीसरा—और ज्यादा मांगता है। कहता है, मेरा खर्चा बढ़ गया है। कोई पूछे, जरा से बच्चे का खर्चा ही क्या ? दो पैसे का भात और दो पैसेका दूध बहुत है।

चौथा—मगर वह उसे दूध और भात खिलाए भी। उस दिन मैं गया था, देखा, तो बैठा दही और जलेबी खिला रहा था। मैंने समझाया तो कहने लगा, अब इसको क्या भूखों मार दूं ?

पहला—इस बच्चे का सुभाओ बिगड़ गया, तो सूरा बाद में पछताएगा, और रोएगा।

दूसरा—और अपना बच्चा भी तो हो ! पराए बच्चेकी इतनी खातर-तवाजो कौन करता है ?

तीसरा—वह तो कहता है, अब यह मेरा ही बच्चा है। उसे 'दीपक' 'दीपक' कहकर बुलाता है। हर बखत गले से लगाए रखता है। जरा रोने लगता है, तो परेसान हो जाता है।

चौथा—(हँसकर) तो नामकरण-संस्कार भी हो गया। वाह !

पहला—(सूरदास को आते देखकर) देखो, वही आ रहा है। जरा पूछूं, वह सरधा-भक्ति कहां चली गई ?

दूसरा—अजी ! अपने राम को क्या ? मोहमाया में फँसता है, फँसने दो। अपने आप भोगेगा। घरबार छोड़ दिया, प्यार न छोड़ा।

[सूरदास का दिलीप को उठाए हुए प्रवेश]

तीसरा—क्यों सूरे ! क्या हाल है तेरा ?

सूरदास—भाई हाल क्या होगा ? दुनिया को छोड़ बैठा था, परमेसर ने फिर माया में फँसा दिया। इसके मां-बाप आ जाते तो मेरा गला छूट जाता।

पहला—यह सब कहने की बातें हैं सूरे ! तुम आप माया में फँस रहे हो। चाहो, तो आज बंधन तोड़ दो। कौन रोकता है तुम्हें ?

सूरदास—यही तो असम्भौ है महाराज ! आखिर इस अजान असहाय बालक को कहां पटकूं ? बताओ !

दूसरा—मैं बताऊं सूरे ! इसे किसी अनाथ-आसरम में दाखल करा दे, और आप परमेसर का भजन कर। (सूरदास निरुत्तर हो जाता है।) अब बोलता क्यों नहीं ? इसका जवाब दे।

सूरदास—अनाथ-आसरम में इसका इतना ख्याल कौन रखेगा ?

तीसरा—(दूसरे से) सुन लिया महाराज ! अब यह सूरदास वह सूरदास नहीं है। सरीर वही है, आत्मा बदल गया है।

सूरदास—यह बात तो तुमने सच कही ! पहले मैं समझता था, घाट पर बैठकर दो पद गा लेने से ही परमेसर खुस हो जाता है। अब मालूम हुआ, कि उसकी भक्ति यह है कि हम उसके जीवों की सेवा करें। पहले मैं केवल अपना आप पालता था, अब किसी दूसरे की भी पालना करता हूं। और मेरा आत्माराम यह कहता है कि सेवा-मार्ग, भक्ति-मार्ग से भी ऊंचा है।

चौथा—यह तुम्हारी सम्मति होगी, अपने राम की तो यह सम्मति नहीं, कि किसी के लल्ला को जलेबियां खिलाना परमेसर के भजन से भी अच्छा है। अगर ऐसा होता, तो बेद-सासतरों में धरम का उपदेस न होता, बच्चों को जलेबियां खिलाने का उपदेस होता।

सूरदास—(मुस्कराकर) अपना अपना ख्याल है भाई !

पहला—(चौथे से) अरे यार, छोड़ो इन बातों में क्या धरा है ? सूरे ! इस लू में कहां जा रहे हो ?

सूरदास—हलवाई से थोड़ा हलुआ मांगने जा रहा हूं।

दूसरा—तुम तो कहते थे, हम किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते। हमें भगवान देता है। अब भगवान से क्यों नहीं मांगते ?

सूरदास—(दिलीप के सिर पर हाथ फेर कर) बाबा ! मैं अपने लिए नहीं मांगता, इस बच्चे के लिए मांगता हूं। यह रोता है, तो मेरे मन में कुछ होने लगता है।

तीसरा—अभी—आगे आगे देखना होता है क्या ?

सूरदास—अच्छा भाई ! भगवान् जो दिखाएगा, देख लूंगा ।

[एक तरफ़ सूरदास चला जाता है, दूसरी तरफ साधु चले जाते हैं ।]

आठवां दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—प्रातःकाल

[रायबहादुर हीरालाल अपने पुत्र के बड़े तैल-चित्र के सामने बैठा उसकी तरफ़ सजल आंखों से देख रहा है । कुछ दूर शामलाल उदास खड़ा है । दोनों की दाढ़ियों के बाल बढ़ गए हैं, दोनों बीमार से मालूम होते हैं । मकान की शोभा भी फीकी मालूम होती है ।]

हीरालाल—(ठंडी आह भरकर) पूरा एक साल बीत गया, और दिलीप का अभी तक कोई पता नहीं मिला ।

शामलाल—मगर मुझे अब भी आशा है, कि वह मिल जाएगा ।

हीरा०—(हवा में देखते हुए) यह सब मेरा ही दोष है । मैं अंधा हो गया था । मैं समझता था, संसार में रुपया-पैसा ही सब कुछ है । अब मालूम हुआ, रुपया-पैसा कुछ नहीं है । मैंने उस दिन कहा था, कि मैं अपनी चीज़ों की रक्षा करना जानता हूं । उसी दिन मेरे चौकीदार मेरे दरवाज़ों पर खड़े पहरा देते रह गए । और मेरा बेटा गुम हो गया । मानों भगवान् ने मेरे मुंह पर थप्पड़ मार कर कहा—बेवकूफ़ देख ! तू कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता हूं, मैं करता हूं । (ज़रा देरके बाद) मेरी आंखें देरमें खुलीं ।

शाम०—(निकट आकर) मगर अब इस तरह ठंडी आहें भरने से क्या होगा ? कोशिश करनी चाहिए, और वह हम कर रहे हैं। भगवान हमारा संकट टारेगा।

हीरा०—(सुना अनसुना करके) मेरा भी यही ख्याल है, कि दिलीप कहीं न कहीं जीता है। भगवान् ने देखा, कि यह आदमी धन-दौलत का लोभी है; इसे जीव की परवा नहीं। उसने मेरा बच्चा मुझ से छीन लिया, और किसी ऐसे प्राणी के हवाले कर दिया, जो शायद धन-दौलत की परवा नहीं करता, आदमी की परवा करता है। (शामलाल की तरफ़ मुड़कर) शामलाल !

शाम०—(सिर झुकाकर) इसमें मेरा भी दोष है !

हीरा०—(आश्चर्य से) तुम्हारा दोष ?

शाम०—मैंने भी धन का ख्याल किया, बच्चे का ख्याल न किया। अगर मैं ही बच्चे का ख्याल करता, तो हमें यह काला दिन देखना नसीब न होता। इसमें मेरा भी दोष है। मेरी भी आंखें बंद हो गई थीं।

हीरा०—तुम सच कहते हो, तुम्हें भी रुपए का रोग लग गया था। (शामलाल का रंग उड़ जाता है, जैसे उसका रहस्य खुल जानेवाला है) तुम को भी हर समय यही धुन लगी रहती थी, कि हम अधिक से अधिक रुपया कमा लें। इसके लिए न मैंने पाप-पुण्य का ख्याल किया, न तुमने। परिणाम यह है, कि हमने धन कमा लिया, मगर मन की प्रसन्नता गँवा बैठे। अब मैं भी रो रहा हूं, तुम भी रो रहे हो। हमने जैसा किया, वैसा पा लिया।

शाम०—भैया........

हीरा०—(चाबियां देते हुए) अलमारी से मेरा दान-पत्र निकालो, मैं उसे बदलना चाहता हूं।

शाम०—इस समय क्या ज़रूरत है? फिर किसी समय सही।

हीरा०—जो समय चला जाता है, वह फिर कभी नहीं आता।

[शामलाल चाबियां लेकर चला जाता है, हीरालाल इधर-उधर टहलता है।]

शाम०—कहां है वह दान पत्र?

हीरा०—(ऊंची आवाज़ से) दूसरे ख़ाने में बाईं तरफ़ रखा है।

[हीरालाल फिर टहलता है, इतने में शामलाल आवेग, आश्चर्य और आनंद से वसीयतनामा पढ़ते पढ़ते प्रवेश करता है।]

शाम०—यह क्या? चौथा भाग मेरे नाम! आपने चौथा भाग मेरे नाम किया था?

हीरा०—तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, इसलिए मैंने वसीयत कर दी थी, कि मेरे बाद मेरी जायदाद के तीन भाग मेरे बेटे को मिलें, चौथा भाग तुम्हें मिले। मगर अब मैं इसे बदलना चाहता हूं, मैंने तुम्हारा जो रूप अब देखा है, वह इससे पहले न देखा था। अब मेरी आंखें खुल गई हैं। अब मुझे होश आ गया है।

शाम०—(डरकर) मगर भैया........

हीरा०—(बात काट कर) मैं पहले समझता था, तुम मेरे भाई हो, मगर इस घटना ने सिद्ध कर दिया है, कि तुम मेरे भाई नहीं हो। [शामलाल गिरने से बचने के लिए कुरसी थाम लेता है। हीरालाल अपना वक्तव्य जारी रखता है] क्या कोई अपने भाई के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता है, जैसा तुमने मेरे साथ किया है?

शाम०—भैया! इसका क्या प्रमाण है कि....

हीरा०—प्रमाण मांगते हो? ज़रा अपने मुँह का उड़ा हुआ रंग देखो। अपनी शोभा-हीन मरी हुई आंखें देखो। अपने कांपते हुए हाथ-पांव देखो। और इतना ही नहीं, अपने गले में अटकते हुए,

ज़बान पर फिसलते हुए, होठों पर जमते हुए शब्द देखो और फिर बताओ, क्या यह प्रमाण काफ़ी नहीं है?

[शामलाल कोई उत्तर नहीं देता। वह उसी तरह अवाक् खड़ा रहता है, जैसे काठ मार दिया गया हो।]

हीरा०—यह सारी बातें साफ़ कह रही हैं, कि दिलीप के गुम होने का जितना मुझे दुःख हुआ है, उससे अधिक तुम्हें हुआ है। कोई भाई अपने भाई के दुःख को इस तरह अनुभव कर सकता है, यह मेरी धारणा से बहार था! इसलिये मैं पहले तुम्हें भाई समझता था, अब भाई नहीं समझता—भाई का शब्द तुम्हारे लिए बहुत असुंदर है। तुम भाई नहीं हो, भाई के रूप में देवता हो।

शाम०—(रोते हुए) नहीं, आपने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। मैं देवता नहीं हूं।

हीरा०—अब मैं अपनी वसीयत बदलना चाहता हूं। तुम्हें तीसरा भाग मिलेगा, बाक़ी दिलीप को मिलेगा। और अगर दिलीप न मिला, तो उसका भाग ग़रीबों को बाँट दिया जाएगा।

शाम०—मेरा मन अब भी यही कहता है, कि हमारा दिलीप हमें मिल जाएगा।

हीरा०—अच्छा! तुम मेरे लिए प्रार्थना करो। मैं पापी हूं, भगवान् मेरी नहीं सुनता। तुम शुद्धात्मा हो, शायद वह तुम्हारी सुन ले और हमारी तक़दीर सीधी हो जाए।

[हीरालाल बाहर चला जाता है]

शाम०—भगवान्! यह तुम मुझे कैसा भयंकर दंड दे रहे हो? एक घड़ी में मारते हो, दूसरी घड़ी में जला लेते हो। यह मर मरकर जीना बड़ा भारी दंड है।

[बाहर से किसी के गाने की आवाज़ आती है। शामलाल कान लगा कर सुनता है।]

गीत

क्यों रोता है मन, सोच तनिक,
मन सोच तनिक, क्यों रोता है।
जो क़िसमत में है मिलता है,
जो होना है सो होता है।

जिसने अंधेर किया जग में,
उस को जग में, संतोष कहां?
क्यों अमृत की आशा उसको
जो विष की खेती बोता है।

क्यों रोता है मन, सोच तनिक—

[शामलाल गाना सुनते सुनते चला जाता है। परदा उठता है, दुर्गादास फ़कीरों के वेष में गाते हुए और हीरालाल सुनते हुए दिखाई देता है। शामलाल भी आकर खड़ा हो जाता है।]

गीत

तूने दुखियों के दिल तोड़े,
कोई तेरा भी दिल तोड़ेगा।
यह पाप-पुण्य का सौदा है,
यह दुनिया का समझौता है।

क्यों रोता है मन, सोच-तनिक—

हीरा०—शामलाल! इस आदमीने सच कहा है, इसे कुछ इनाम दे।

दुर्गा०—जब देने का समय था, उस समय तुमने कुछ नहीं दिया, तो अब क्या दोगे? अब वह समय बीत गया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।

शाम०—तुम कौन हो? मालूम होता है, मैंने तुम्हें कहीं देखा है! मालूम होता है, मैंने तुम्हारी आवाज़ कहीं सुनी है। मगर याद नहीं आता, कि कब और कहां?

हीरा०—क्या तुम कहीं—

दुर्गा०—(हँसकर) मैं दुर्गादास हूं।

शाम०—(चौंककर) दुर्गादास? कौन दुर्गादास? क्या...क्या....

दुर्गा०—हां वही अभागा! मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाया, तुमने परवा न की। मैंने तुमसे दया की भीख मांगी, तुमने मेरी पुकार न सुनी। मेरे पास एक झोंपड़ा था, वह भी तुमने छीन लिया और मुझे, और मेरी स्त्री और मेरे बच्चों को बाहर निकल दिया। स्त्री बीमार थी, वह सरदी की मार न सह सकी, और मर गई। बच्चे छोटे थे, मैं उनको पाल न सका और वह चले गए। अब मैं दुनिया में अकेला हूं। अब मुझे किसी की दया नहीं चाहिए। अब मैं किसीसे दया नहीं मांगता।

हीरा०—दुर्गादास! मुझे अफ़सोस है।

दुर्गा०—मगर अब तुम्हारा यह अफ़सोस भी मेरे किसी काम का नहीं है। तुम्हारा अफ़सोस मेरी स्त्री को ज़िन्दा नहीं कर सकता, तुम्हारा अफ़सोस मेरे बच्चों को वापस नहीं ला सकता।

हीरा०—शामलाल इसका घर इसे लौटा दो। मुझे इसके घर की ज़रूरत नहीं।

शाम०—आप ठीक कहते हैं।

दुर्गा०—अब मेरे पास केवल दो वस्तुएं हैं; एक मेरी देह, दूसरी मृत अभिलाषाएं। इन दोनों को लकड़ी और लोहे के घर की ज़रूरत नहीं। मेरी देह खुले आकाश तले रह सकती है, मेरी अभिलाषाएं मेरे टूटे हुए दिल में रह सकती हैं। इसलिए अब शोक के समान आपकी दया भी मेरे किसी काम नहीं आ सकती।

हीरा०—(दुर्गादास के सामने घुटने टेककर) दुर्गादास ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें नष्ट करके अपना आप भी नष्ट कर लिया है। मैंने तुम्हारे बच्चों को घर से निकाला था, भगवान् ने मेरा बच्चा मेरे घरसे निकाल दिया। मुझसे घृणा न करो। आज तुम्हारे समान मैं भी आशाओं के स्वर्ग का ठुकराया हुआ एक अभागा हूं। (फूट फूट कर रोता है) और मेरी अमीरी मेरी ज़रा मदद नहीं करती।

शाम०—हमारे लाखों रुपये बैंकों में पड़े हैं, और पता नहीं हमारे बच्चे को रोटी का एक टुकड़ा भी मिलता है, या नहीं। हमारा रुपया किस कामका ?

हीरा०—क्या हमारी यह दीन-दशा देखकर भी तुम्हें हमपर दया नहीं आती ? दुर्गादास मुझे क्षमा करो। मैं तुमसे क्षमा मांगता हूं !

दुर्गा०—मैं यहां तुम्हें देखकर खुश होने के लिए आया था। मगर यह मेरी भूल थी। कोई पिता दूसरे पिता को दुःखी देखकर सुखी नहीं हो सकता। आग सभी को तपाती है।

हीरा०—मुझे यह आशीर्वाद न दो, कि भगवान् मेरा बच्चा मुझसे मिला दे। मैं इसके योग्य नहीं हूं। मगर यह तो कह दो, कि वह जीता रहे; और जहां रहे, सुखी रहे ! मैं इसी से संतुष्ट हो जाऊंगा।

शाम०—आशीर्वाद दो दुर्गादास !

दुर्गा०—भगवान् ! इनके बच्चे की रक्षा कर ! वह जहां है, वहां खुश रहे।

शाम०—दुर्गादास ! भगवान् तुम्हारे मन को भी शांति देगा।

हीरा०—शामलाल ! यह ग़रीब है, इसीलिए इसका हृदय इतना विशाल और सुकोमल है। अगर यह अमीर होता, तो इसके मुख से उदारता और क्षमा के ये शब्द भी न निकलते। दुर्गादास ! (पांव पकड़कर) भाई आओ ! एक बार घर के अंदर चलो। जहां से तुम्हें अपमानित करके निकाला था, एक बार वहीं बैठकर तुम्हारी पूजा कर लूं। अब मैं पहला हीरालाल नहीं हूं। अब मेरे मनमें भी पीड़ा है। अब मेरी आंखों में भी आंसू हैं। और मेरे होंटो पर भी विनयके शब्द हैं। अब मैं भी मनुष्य हूं। मनुष्य पर विश्वास करो।

नवां दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कंपनी का अभ्यास-घर

समय—दुपहर

[जयकृष्ण बाजेवालों को समझा रहा है, पास ही एक अभिनेता खड़ा है। परे बाटलीवाला सोफे पर बैठा निरीक्षण कर रहा है। रिहर्सल चालू है।]

जयकृष्ण—(अभिनेतासे) तुम तैयार हो ?

अभिनेता—जी हां, मैं तैयार हूं।

जय०—(बाजे वालों को इशारा करके) एक—दो—

[बाजा और तबला शुरू हो जाता है। अभिनेता गाने लगता है।]

गीत

छाँड मन ! हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुद्धि उपजति है, परत भजन में भंग।

[अभिनेता इतना बेसुरा गाता है कि जयकृष्ण उसके मुंह पर हाथ रखकर उसे गाने से रोक देता है। बाजा तबला सब बंद हो जाता है। बाटलीवाला बिगड़ता है।]

बाटलीवाला—(सोफ़े से उठकर) यह गाना है, या रोना है ?

जयकृष्ण—जितनी मेहनत इस आदमी पर की गई है, उतनी मेहनत अगर किसी गधे पर की जाती, तो वह भी इससे अच्छा गाने लगता। यह गधेसे भी गया गुज़रा है।

बाटली०—मेरे ख्याल में जिस समय परमात्मा राग-विद्या बाँट रहा था, उस समय यह महात्मा भंग पीकर किसी अस्तबल में पड़े सो रहे थे। चले हैं रागी बनने !

अभि०—हजूर !

बाटली०—(नक़ल करते हुए) हजूर !

अभि०—(और भी मिन्नत करके) हजूर !

बाटली०—चलो दफ़ा हो यहां से—निकलो, दूर हो। मैं तुम्हारा मुंह तक नहीं देखना चाहता। (बाजे वालोंसे) इस समय आप भी कृपा कीजिए ! मेरा दिमाग़ ख़राब होगया है।

जय०—(धीरे से) इस समय भाग जाओ। सेठ साहब क्रोध में हैं। और क्रोध न करें, तो क्या करें ? सारा गुड़ गोबर हो गया।

[बाजेवाले उठकर चले जाते हैं। जयकृष्ण बाटलीवाला के पास जाकर खड़ा हो जाता है।]

जय०—यह तो बिलकुल गया गुज़रा निकला। न गले में मिठास है, न तालका ज्ञान।

बाटली०—(क्रोध से) तुम गधे को, घोड़ा बनाना चाहते थे। क्या कभी बना है?

जय०—(ठंडी आह भरकर) नाटक होने में पंद्रह दिन बाक़ी हैं, और अभी तक हमारे पास कोई काम का आदमी ही नहीं। क्या करें, क्या न करें। कोई रास्ता नहीं सूझता। कोई सूरत नज़र नहीं आती।

बाटली०—सूरत नज़र आ गई थी, और आदमी मिल गया था। मगर वह कहता है, भगवान् ने मुझे गला मुफ़्त दिया है, मैं भी लोगों को गाना मुफ़्त सुनाऊंगा। अगर वह आ जाता, तो काशी भर में शोर मच जाता, और हमारी किसमत जाग उठती।

[बाटलीवाला सोफ़े पर बैठ जाता है।]

जय०—और हम भी उस पर ऐसी मेहनत करते कि उसे हीरा बना देते, हीरा।

बाटली०—अरे भाई! लोग पतंगों की तरह टूटते, पतंगों की तरह। क्या सुर है! क्या लोच है!! क्या गला है!!!

जय०—(दूसरी कुरसी पर बैठकर) मगर किस काम का?

बाटली०—हम यहां रो रहे हैं, और वह नहीं आता। मेरी कंपनी तबाह हो रही है, और वह नहीं आता। मैं उसे दो-तीन सौ रुपया महीना देने को तैयार हूं, और वह नहीं आता। (बाहर कोई द्वार खटखटाता है।) कौन है? (बिगड़कर) कह दो, सेठ साहब नहीं हैं।

सूरदास—(द्वार खोलकर) मैं सूरदास हूं, सेठ साहब।

बाटली०—अरे सूरदास ! (आगे बढ़कर) आओ भाई ! क्या हाल है ? आज तो बड़ी मेहरबानी की। (कुरसी के पास लाकर) ऐ ऐ ऐ यहां बैठ जाओ। कहो मज़े में तो हो ना ?

सूरदास—जी हां, आपकी किरपा है।

बाटली०—कहिए, कैसे आए ?

सूरदास—(साहस करके) आप को याद है, आपने उस दिन घाट पर मुझ से कहा था, कि....

बाटली०—हां हां हां, मेरी कंपनी के द्वार तुम्हारे लिए आज भी खुले हैं। हमें एक आदमी की....

जय०—(बात काटकर) ज़रूरत थी, वह तो हमें मिल गया है। मगर जब तुम चलकर आए हो, तो हम तुम्हें भी रख लेंगे। हम तुमसे न नहीं कह सकते।

[जयकृष्ण बाटलीवाले को आंख से इशारा करता है, बाटलीवाला इशारे का मतलब समझ लेता है।]

सूरदास—आप मुझे अब भी रख लेंगे सेठ साहब !

बाटली०—(खुश होकर, मगर खुशी को छिपा कर) अब जब तुम आए हो, तो नान करूंगा मैं।

सूरदास—बड़ी किरपा आपकी।

बाटली०—क्या तनख्वाह लोगे ? बोलो !

सूरदास—अब यह मैं क्या बताऊं सेठ साहब ! मेरा एक बच्चा है। मुझे उसके लिए कपड़ा भी चाहिए, खाना भी चाहिए, खिलौना भी चाहिए। मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए।

बाटली०—देखो, मैं शुरू में तुम्हें एक....

जय०—(रोककर) तीस रुपये महीना दे देंगे हम। इससे ज़्यादा नहीं।

[बाटलीवाला जयकृष्ण की ओर क्रोध से देखता है। जयकृष्ण ज़रा परवाह नहीं करता।]

सूरदास—(खुश होकर) तीस रुपए!

बाटली०—(मतलब न समझकर) पहले पहले! जब काम अच्छा करने लगोगे तो बढ़ा दूंगा। यह मेरा इकरार रहा। और मैं जो कहता हूं, पूरा करता हूं। मगर शुरू में तीस रुपया!

सूरदास—मेरे लिए तो यही बहुत है, भाई!

[जयकृष्ण बाटलीवाले की तरफ़ देखता है।]

बाटली०—सूरदास! मैंने भूमि पर रेंगने वाले तुच्छ कीड़ों को यश और कीर्ति के आकाश का तारा बना दिया है। तुम तो पहले ही रागी हो, चार दिनों में चाँद बनकर चमकने लगोगे। (जयकृष्णसे) एग्रीमेंट! (सूरदास से) भई तुम्हारा वह गीत मुझे आज भी याद है—'बाबा! मनकी आंखें खोल!' खूब गाते हो। (जयकृष्ण ऐग्रीमेंट देता है।) लो सूरदास, यहां अँगूठा लगा दो। (अँगूठा लगवाकर) बस! यह तुमने अँगूठा नहीं लगाया, अपनी सोती हुई क़िसमत को जगा लिया है।

सूरदास—तो क्या आज मुझे कुछ....

बाटली०—(मुस्कराकर) पेशगी! हां हां (जेबसे नोट निकालकर) यह लो दस रुपए का नोट! तो अब कल से आना शुरू कर दोगे ना?

सूरदास—हां भई! अब तो सूरदास बिक गया तुम्हारे हाथ। (उठकर) तो अब चलता हूं। आज्ञा है?

जय—बड़ी खुशी से। (हाथ थामकर) आइए। मैं आपको बाहर पहुँचा हूं।

[सूरदास को पहुँचा देता है। और जब वह चला जाता है, तो द्वार बंद करके बाटलीवाले की ओर देखता है। दोनों खुश नज़र आते हैं।]

बाटली०—अब बताओ, मैंने क्या कहा था उस दिन ?

जय०—(सिर झुकाकर) रुपए में सचमुच बड़ी शक्ति है। यह सब कुछ कर सकता है।

बाटली०—रुपया चाहे, तो हवा में उड़ते हुए पंछी को बांध ले। अब मेरे नए नए नाटक निकलेंगे, अब मेरी कंपनी चलेगी, अब मेरे हाँ सोना बरसेगा। जयकृष्ण ! आज हमें सफलता का रास्ता मिल गया है, हमारी तक़दीर बदल गई है। हमारे लिए भगवान ने, धन यश और उन्नति के द्वार खोल दिए हैं। अब ऐश ही ऐश है।

दृश्य-परिवर्तन

[सूरदास रंग-भूमि पर गाता हुआ दिखाई देता है ।]

गीत

छाँड मन ! हरि विमुखन को संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग ।
कहा होत पय-पान कराए, विष नाहिं तजत भुजंग,
कागहि कहा कपूर चुगाए, स्वान न्हवाए गंग ।
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषण अंग,
गज को कहा न्हवाए सरिता, बहुरि धरै खहि अंग ।
पाहन पतित बांस नहिं बेधत, रीतो करत निषंग,
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजे रंग ।

[गीत की समाप्ति पर लोग बड़े ज़ोर से तालियाँ बजाते हैं, और वाह वाह का शोर मचाते हैं। सूरदास सिर झुकाता है। लोग फूल फेंकते हैं।]

[परदा गिरता है ।]

दूसरा अंक

पर्दा उठता है, तो एक सफ़ेद पर्दे पर

'बीस साल के बाद'

लिखा दिखाई देता है, देखते देखते
यह पर्दा भी उठ जाता है।

पहला दृश्य

स्थान—शामलाल का घर

समय—दिन का तीसरा पहर

[शामलाल और लाजवंती]

लाजवंती—आपके जासूसों ने कुछ पता लगाया, या नहीं ?

शाम०—कुछ भी नहीं।

लाज०—मेरा ख्याल है, शंकरदास मर चुका है। अगर जीता होता, तो इतने दिन कहाँ बैठा रहता ? अब जासूसों से कहिए, बस करें। मुफ्त रुपया बरबाद करने से क्या लाभ ?

शाम०— लाभ हो, या न हो, पर यह खोज बंद नहीं हो सकती, शायद किसी दिन भगवान् सुन लें। और मुझे विश्वास है, वह सुनेंगे।

लाज०—बीस साल कम नहीं होते।

शाम०—मेरा पाप भी कम नहीं है। मैंने एक बाप का दिल दुखाया है। (ठंडी साँस लेता है।) मैंने एक बच्चेसे उसका घर और घरका आराम छीना है।

लाज०—अब इन बातों से क्या होता है ?

शाम०—तो मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ? ऐसा मालूम होता है, जैसे मेरा जीवन ही मेरा दंड बन गया है। मैं हर रोज़ मरता हूं। मैं हर रोज़ जीता हूं।

लाज०—धीरज धरिए !

शाम०—पापियों को धीरज कहाँ ? मैं चाहता हूँ, आज जाकर भाई साहब के सामने सब कुछ स्वीकार कर लूँ। अब यह राज़ मेरे सीने में नहीं रह सकता।

लाज०—मगर यह तो और भी भूल होगी। जानते हो वे क्या सोचेंगे, और क्या कहेंगे तुम्हारी बात सुनकर ?

शाम०—मुझे तो कभी कभी ऐसा मालूम होता है, जैसे वे सब कुछ जानते हैं। उनकी एक एक बात से मेरा संदेह विश्वास का रूप धारण कर लेता है। मगर आख़िर में वे एक ऐसी बात कह देते हैं, जिससे मालूम होता है कि वे कुछ भी नहीं जानते। यह एक एक क्षण में रहस्य खुल जाने की आशंका, यह सम्मान के ऊपर मंडराते हुए अपमान के काले बादल, यह मृत्यु के मुँह में फँसा हुआ जीवन— यह सब असह्य है। एक आदमी को एक बार गोली मारकर समाप्त

कर दो, यह मामूली बात है। मगर दिन-रात उसके चारों तरफ़ गोलिया चलती रहें, और वह हर समय मौतको अपनी तरफ़ आता देखे, और तड़प तड़प कर रह जाए, यह नरक की आग में जलने से भी भयानक है। (लाजवंती की तरफ़ मुड़कर) मुझे रोकने का यत्न न करो, मैं आज सब कुछ कह देना चाहता हूँ ताकि एक बार झगड़ा ख़त्म हो जाए, और मेरे दिलसे बोझ उतर जाए।

लाज०—और आपके भाई साहब का क्या हाल होगा, आपने यह भी सोचा ?

शाम०—उनकी आँखों से पर्दा उठ जाएगा। वह अँधेरे में न रहेंगे।

लाज०—आपके भाई साहबको दुनिया में दो आदमियों से प्यार था। एक अपने बेटे से, दूसरा आप से। आपके मन में लोभ जागा, उनका बेटा खो गया। अब आप जाकर बता दीजिए कि यह पाप आपने किया है, उनका भाई भी खो जाएगा। उन्होंने बेटे का दुख सह लिया था, उस समय उनका शरीर और मन दोनों जवान थे। मगर अब भाई का दुख न सह सकेंगे—आज उनका शरीर और मन दोनों कमज़ोर हो चुके हैं।

शाम०—(कुछ समझकर, कुछ न समझकर) मगर एक बात बताओ; क्या तुम मुझसे घृणा नहीं करतीं ?

लाज०—मैं आपसे घृणा नहीं करती, आपके लिए मंगल-कामना करती हूँ।

शाम०—मगर एक दिन तुमने मुझसे साफ़ साफ़ कहा था कि तुम मुझसे घृणा करती हो।

लाज०—उस समय मेरा यही धर्म था।

शाम०—और आज कहती हो, तुम मुझसे घृणा नहीं करती, और मेरे लिए मंगल-कामना करती हो।

लाज०—आज मेरा यही धर्म है।

शाम०—लाज, मैं कुछ नहीं समझता, तुम क्या कह रही हो।

लाज०—मैं कह रही हूँ, भाई साहब से कुछ न कहिए और अपना राज़ अपने ही पास रखिए।

शाम०—तो तुम चाहती हो, मैं अकेला ही इस आग में जलता रहूँ? अच्छा बाबा यह आग मैंने जलाई है, इसमें मैं ही जलूँगा, और इसकी हलकी-सी आँच भी अपने भाई तक न जाने दूँगा। मैं पाप के इस पथ में अकेला हूँ, और मेरे साथ कोई नहीं है।

लाज—तुम्हारे साथ मैं हूँ।

शाम०—तू हिन्दू नारी है। तू अपने पति के पाप का फल हँसते-हँसते भोगेगी। (तेज़ी से प्रस्थान।)

लाज०—स्वामी! तुमने पाप किया है। और तुम्हारा पाप अगर संसारके सामने खुल जाए, तो वह तुमसे घृणा करने लगे। मगर जिस तरह तुम उस पाप का प्रायश्चित कर रहे हो, उसे देखकर मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। भगवान तुम्हारी मेहनतको सफल करे, और यह पाप की छाया तुम्हारे मनसे दूर हटे।

[धीरे धीरे प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—सूरदासके घर में दीपक का कमरा

समय—दिनके चार बजे

[कल्लो की मा धोबी से धुले हुए कपड़े ले रही है, और उससे झगड़ रही है ।]

कल्लो की माँ—मैं कहती हूँ, बासठ थे । दो और साठ ।

धोबी—न, इकसठ थे । यह देखिए—सूरदास जी की तीन धोतियाँ, तीन कुरते, दो कोट—आठ हुए । और दीपक की सात पतलूनें, सात कोट, पाँच कुरतियाँ, पाँच गंजियाँ, छै क़मीज़ें ।

कल्लो०—और वह नीली क़मीज़ कहाँ है ?

धोबी—हाँ ! वह रह गई ।

कल्लो०—मानता ही न था मुरदार । अच्छा पहले वह कमीज़ ला, धुलाई के लिए कपड़े फिर मिलेंगे । (कपड़े उठाकर मेज़की तरफ़ जाते हुए) पिछली बार एक धोती रह गई थी । दोनों लेकर आओ

[धोबी का जाना, सूरदास का आना]

सूरदास—कल्लो की माँ ! दीपक के कपड़े आ गए ?

कल्लो०—हाँ बाबा ! आ गए । आज कपड़े न आते, तो मेरी शामत आती । कल ही शोर मचा रहा था ।

[कोई द्वार खटखटाता है ।]

सूरदास—कौन है रे ?

आवाज़—दरज़ी !

[दरज़ी का प्रवेश]

कल्लो०—आज यह दरज़ी काहे के लिए आया है ? क्या बन-वाया जाएगा इससे ?

सूरदास—(कुरसी पर बैठकर) दीपक कहता था, दो सूट और सिलाने हैं। इसलिए........

कल्लो०—बाबा ! आप लड़के का सिर फिरा देंगे। इतने कपड़े कम हैं, जो और सिलाना चाहते हैं ? जितने कपड़े इसके पास हैं, उतने कपड़ोंसे एक दूकान खुल सकती है।

सूरदास—कल्लो की माँ ! तुम आजकल के लड़कों को नहीं जानतीं। न तुम आजकल के लड़कों के फ़ैशन को जानती हो।

कल्लो०—मगर मैं यह जानती हूं, कि आप लड़के को ख़राब कर देंगे। (दरज़ी से) ओ दरज़ीके बच्चे ! भाग जा। (दरज़ी डरकर भाग जाता है।) हर रोज़ सूट ! हर रोज़ सूट ! ! सूट न हुए, गाजर और मूली की तरकारी हो गई।

सूरदास—नहीं सिलाना चाहती, तो न सही। मगर दीपक बिगड़ेगा।

कल्लो०—नहीं बिगड़ता।

सूरदास—(मुस्कराकर) अच्छा भई तुम्हारी मरज़ी !

[कल्लो की माँ दीपक का सूट खूँटी पर लटका देती है, और बाक़ी कपड़े अलमारी में तह करके रखती है। इतने में नवयुवक दीपक नेकटाई बाँधते-बाँधते प्रवेश करता है, और कल्लो की माँ को देखकर पूछता है—]

दीपक—कल्लो की माँ ! मेरा सूट निकाला ?

[कल्लो की माँ मुंहसे जवाब नहीं देती, खूँटी की ओर इशारा करती है, और तौलिए लेकर बाहर चली जाती है। दीपक खूँटी के पास जाकर कपड़े पहनता है और गुनगुनाता है।]

दीपक—मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

सूरदास—दीपक ! क्या आज रेडियो में यही गीत गा रहे हो तुम ?

दीपक—हां दादा !

सूरदास—मगर मैंने तुम्हें ऐसे तो नहीं सिखाया था बेटा !

दीपक—वहां ठीक गाऊंगा।

[कल्लो की माँ और कपड़े लिए आती है, और भूल से एक पुस्तक गिरा देती है। सूरदास चौंकता है, दीपक बिगड़ता है।]

दीपक—(मुड़कर देखता है।) मेरी पुस्तक गिरा दी ? ओ बाबा ! यहां तो हर समय भूचाल आता रहता है।

कल्लो की०—तुम तो; इस तरह चिल्लाते हो, जैसे तुम्हारी पुस्तक नहीं गिरी, आकाश गिर पड़ा है। (पुस्तक मेज़ पर रख देती है।) लो आकाश फिर अपनी जगह पर चला गया।

दीपक—मैं कै बार कह चुका हूं, कि मेरी कोई पुस्तक ज़मीन पर न गिरे। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता।

कल्लो०—और मैं कै बार कह चुकी हूं कि तुम बिगड़कर बात न किया करो। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती। तुम सीधी तरह बोला करो।

दीपक—(बिगड़कर) कल्लो की माँ !

कल्लो०—(बिगड़कर) दीपक के बच्चे !

सूरदास—अरे बाबा ! यह तुम लोगों की बात बात में लड़ने की आदत बुरी। क्या मिलता है तुम्हें इससे ?

दीपक—मैंने क्या कहा है? आप ही बताइए।

कल्लो०—और मैंने क्या कहा है? आप ही कहिए!

सूरदास—अरे भाई! किसी ने कुछ नहीं कहा, अब झगड़ा समाप्त करो। ज़रा सी बात हो जाए, उसी में लड़ने लगते हैं।

[मोटर के हार्न की आवाज़ आती है।]

दीपक—दादा! आपकी थियेटर की गाड़ी आई है। तैयार हो जाइए।

[दीपक बूट के फीते बाँधने लगता है। सूरदास अपना अँगरखा पहनता है और जाने को तैयार होता है।]

सूरदास—अभी तुम तो कुछ देर ठहरकर जाओगे ना?

दीपक—जी नहीं। मुझे एक मित्र के हाँ भी जाना है।

सूरदास—मैं आज तुम्हारा गाना सुनूँगा। देखूं वहाँ तुम घबरा तो नहीं जाते।

[सूरदास चला जाता है, कल्लो की माँ मेज़ से एक पुस्तक उठाती है, तो उसमें से एक चित्र निकल आता है। कल्लो की माँ वह चित्र दीपक के पास ले जाती है, और पूछती है—]

कल्लो०—यह किसकी तसवीर है?

दीपक—(डरकर) कल्लो की माँ—देखो ना—बात यह है—यह चित्र—

कल्लो०—तो आजकल यही पढ़ाई होती है? बुलाऊँ अभी सूरदास को? बोलो!

दीपक—(मिन्नत करते हुए) न कल्लो की माँ! यह ग़ज़ब न कर बैठना कहीं।

[कल्लो की माँ मुस्कराती है, दीपक पुस्तक लेकर चला जाता है। कल्लो की माँ सोचने लगती है, शायद यह कि अब दीपक लड़कियों के फेरमें पड़ने लगा।]

तीसरा दृश्य

स्थान—रूपकुमारी का घर

समय—शाम

[रूपकुमारी कपड़े पहन रही है, और कुछ गुनगुना रही है। इतने में उसकी विधवा माँ यशोदा का प्रवेश।]

यशोदा—तैयार हो गई? चलो चलें।

रूपकुमारी—(चौंककर) कहाँ चलना होगा माँ?

यशोदा—लीला की पार्टी में, और कहाँ?

रूप०—मगर मैं तो आज न जा सकूँगी माँ।

यशोदा—क्यों, क्या बात है?

रूप०—आज दीपक की चाय है।

यशोदा—(क्रोध से) तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?

रूप०—वाह! कल आपके सामने ही तो कहा था।

यशोदा—(टहलते टहलते) मेरा ख्याल है, तुम्हें चलना चाहिए।

रूप०—मैं चलने को तो तैयार हूं, मगर दीपक क्या कहेगा?

यशोदा—कहना क्या है? मैं समझा दूँगी। (पास आकर हाथ पकड़ लेती है) चलो, वहाँ जाना ज़रूरी है। दीपक को चाय फिर पिला दी जाएगी।

रूप०—आप जाइए। मेरा जी नहीं चाहता।

यशोदा—(पास बैठकर) देखो बेटी ! अब तुम छोटी नहीं हो, इस लिए मैं तुम से कुछ छुपाना नहीं चाहती। बात यह है, कि वहाँ रतनलाल भंडारी भी आ रहा है। यह भंडारी पंजाब के प्रसिद्ध लखपति हीरालाल का संबंधी है, और अभी अभी विलायतसे इंजीनियर बनकर आया है। (थोड़ी देर चुप रहने के बाद) आखिर तुम्हारा ब्याह भी तो कहीं करना होगा। और आज कल अच्छे लड़के आसानी से नहीं मिलते।

[रूपकुमारी क्रोध से उठकर परे चली जाती है, और दीवार के साथ पीठ लगा कर खड़ी हो जाती है, और मुँह फुलाकर कहती है—]

रूप०—आप ऐसी बातें मुझ से न किया करें। मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मुझे ऐसी बातोंसे कोई वास्ता नहीं।

यशोदा—(मुस्कराकर) इतनी बड़ी हो गई, मगर फिर भी पगली ही रही। लड़कियों को घरमें तो राजे-महाराजे भी नहीं बिठा रखते। हमारी तो बिसात ही क्या है ? मैं तुम्हारे हाथ जल्दीसे जल्दी पीले कर देना चाहती हूँ।

रूप०—(और भी चिढ़कर) आप फिर वही बातें करने लगीं !

यशोदा—(प्यार से पुचकार कर) अच्छा बाबा अब नहीं करती। चलो, चलें। देर हो रही है।

रूप०—मैं नहीं जा सकती।

यशोदा—(क्रोध से) अच्छा न जा। मर।

[यशोदा चली जाती है। रूप सोचने लगती है इतनेमें दीपक द्वार में आकर खड़ा हो जाता है।]

दीपक—नमस्ते।

रूप०—(हाथ-घड़ी देखकर) बीस मिनट लेट!

दीपक—मुझे अफ़सोस है। (आकर कुरसी पर बैठ जाता है।) आज माँ जी कुछ ख़फ़ा हैं क्या? मैंने नमस्ते कही, उन्होंने कुछ जवाब ही नहीं दिया। मुँह फेरकर चली गईं। क्या बात है?

रूप०—(मुस्कराकर) कुछ सोच रही होंगी। (पुकारकर) रंजीत! चाय यहीं ले आओ। (दीपक से) यहीं पिएँगे।

दीपक—मगर माँ जी कहाँ गई हैं?

रूप०—यहाँ पास ही एक पार्टी है, वहाँ गई हैं।

दीपक—और तुम क्यों नहीं गईं?

रूप०—अगर मैं चली जाती, तो तुमको यहाँ चाय कौन पिलाता? निराश लौट जाते।

दीपक—(मेज़ पर हाथ फैलाकर) मामूली बात थी। आज लौट जाता, कल फिर चला आता।

रूप०—अभी मैंने एफ़. ए. पास किया है, जब तुम्हारी तरह बी. ए. की परीक्षा दे दूँगी, तो मैं भी बेपरवा और असभ्य हो जाऊँगी। इससे पहले नहीं।

दीपक—तो मैं असभ्य हूँ?

रूप०—जो आदमी किसी को चाय पर बुलाकर आप कहीं चले जाने को बुरा न समझे, उसके लिए और शब्द कौन सा है? यह तुम ही बता दो?

दीपक—माँ की आज्ञाकारिणी बिटिया रानी!

[रंजीत चाय का सामान रख जाता है । रूपकुमारी चाय बनाती है ।]

रूप०—देखूंगी, तुम भी किसी दिन बाप के आज्ञाकारी बेटा राजा बनते हो, या नहीं ? (चीनी ज़्यादा डाल देती है ।)

दीपक—मालूम होता है, आज तुम्हारे सारे घरकी चीनी मेरे ही प्याले में आ जाएगी ।

रूप०—(अपनी भूल समझकर) तो आप इसे रहने दें, मैं दूसरा प्याला तैयार किए देती हूं ।

दीपक—(प्याला लेकर) मुझे ज़्यादा चीनी पीने की आदत है ।

[चाय पीता है]

रूप०—(अपना प्याला तैयार करते हुए) भंडारी साहब कहा करते हैं, ज़्यादा चीनी वाली चाय पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।

दीपक—(चाय पीना बंद करके) यह भंडारी साहब कौन हैं, जिनका तुम बार बार ज़िक्र किया करती हो ?

रूप०—इंजीनियर है । अभी विलायत से पढ़कर आया है, और माँ जी की राय में बड़ा योग्य आदमी है ।

दीपक—तो मालूम होता है यह भंडारी साहब चाय में नमक मिलाकर पीते होंगे ।

रूप०—नमक मिलाकर नहीं पीते, (मुस्कराकर) बरफ़ मिलाकर पीते हैं । ठंडी चाय ।

[दीपक क़हक़हा लगाकर हँसता है ।]

दीपक—मालूम होता है, दिलचस्प आदमी है यह ।

रूप०—दिलचस्प नहीं है, सनकी है। (दीपक खुश होता है।) मगर है रौनक़ी। (दीपक उदास हो जाता है।) और चाय दूँ।

दीपक—(मुँह फुलाकर) नहीं! (सोच में पड़ जाता है।)

रूप०—आप क्या सोच रहे हैं?

दीपक—कुछ नहीं।

रूप०—मैं बताऊँ आप क्या सोच रहे हैं? आप यह सोच रहे हैं कि यह भंडारी अगर इस घर में रोज़-रोज़ आने लगा, तो आपको भी ठंडी चाय मिलने लगेगी, बरफ़ वाली।

दीपक—भगवान् हमें सदा गरम चाय ही देगा। ठंडी चाय हमारे दुश्मन पिएँ।

[बाहर से मोटर-हार्न की आवाज़ आती है।]

रूप०—(चौंककर) माँ जी आ गईं!

दीपक—इतनी जल्दी।

[यशोदा और भंडारी साहब का प्रवेश। दीपक और रूप दोनों खड़े हो जाते हैं और स्वागत करते हैं।]

भंडारी—(दीपक को देखकर यशोदा से) मेरा मतलब है, क्या आप मेरा इनसे परिचय करा देंगी?

यशोदा—(भंडारी की तरफ़ इशारा करके) मिस्टर रतनलाल भंडारी! और (दीपक की तरफ़ इशारा करके) आपने सूरदास का नाम तो सुना ही होगा, उनके पुत्र दीपकचंद!

भंडारी—अच्छा सूरदासके पुत्र! (याद करते हुए) उनसे तो मैं एक आध बार मिला भी हूं। (हाथ मिलाकर) So very glad to see you.* आपके पिता जी तो खूब गाते हैं। मुझे विश्वास

* आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

है, कि अगर वे इंगलैंडमें होते, तो चाँदीके महल खड़े कर लेते। क्या आपको भी कुछ गाने बजाने का शौक़ है ?

यशोदा—(नाराज़गीको दबानेका यत्न करते हुए) जी हाँ, इन्हें भी गानेका शौक़ है ?

रूप०—गाने का शौक़ है ? सूरदास के बाद इन जैसा गानेवाला शहर भरमें दूसरा कोई नहीं है।

[यशोदा रूप की ओर क्रोध से देखती है। रूप अपना मुँह दूसरी तरफ़ कर लेती है।]

भंडारी—खूब ! Worthy son of a worthy father ! * (दीपकसे) आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

दीपक—मुझे भी बड़ी खुशी हुई।

यशोदा—रूप ! भंडारी साहब कहते हैं, चलो आज नाटक देखने चलें। मैं तुम्हें लेने आई हूँ।

भंडारी—(दीपक से) आप भी चलिए। मेरा मतलब है जब मैं इंगलैंडमें था, तो हर इतवारको........

रूप०—(दीपक से) चलोगे ?

दीपक—मुझे क्षमा कीजिए, आज मुझे रेडियो पर गाना है। और (हाथघड़ी देखकर) मुझे पहले ही देर हो चुकी है। और देर हुई, तो काम ख़राब हो जाएगा।

यशोदा—इनके तो घरमें गंगा है। इनको नाटकमें क्या दिलचस्पी हो सकती है।

दीपक—(मुस्कराकर) जी हाँ, नमस्ते।

भंडारी—(मुस्कराकर) नमस्ते नौजवान, नमस्ते।

---

* योग्य पिताका योग्य पुत्र।

[दीपक का प्रस्थान]

भंडारी—(दीपक की तरफ़ देखते देखते) दिलचस्प आदमी है। (यशोदा की तरफ़ मुड़कर) मेरा मतलब है, शक्ल-सूरत से मालूम होता है कि इसमें जीवन है, और जोश है, और Personality अर्थात् व्यक्तित्व है। इंगलैंड में लोग ऐसे नौजवानों को बहुत पसंद करते हैं। और लड़कियाँ तो ऐसे नौजवानों पर मुग्ध हो जाती हैं।

यशोदा—(बातका रुख़ बदलने के लिए) क्या आप एक प्याला चाय न पिएंगे ? रूप ! मँगवाओ ना !

भंडारी—(रोककर) चाय मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है। मगर इस समय नहीं। इस समय चलकर सीटें बुक कराना है।

[भंडारी का प्रस्थान, रूप अपने कमरे में जाना चाहती है।]

यशोदा—(गंभीरता से) रूप !

रूप०—(जाते जाते मुड़कर) हाँ माँ !

यशोदा—मुझे तुम्हारी यह बातें बिलकुल पसंद नहीं हैं।

रूप०—मेरी कौन सी बातें माँ !

यशोदा—मैं नहीं चाहती, दीपक यहाँ आया करे।

रूप०—(सहमकर) क्यों ?

यशोदा—क्योंकि अब मुझे सब कुछ मालूम हो गया है।

रूप०—(सिर झुकाकर) क्या मालूम हो गया है ?

यशोदा—बेटी ! मेरा मुँह न खुलवाओ। क्या तुम जानती हो, वह किसका बेटा है ?

रूप०—सूरदास का !

यशोदा—सूरदास का बेटा होता, जब भी कोई बात थी। मैं समझ लेती, कि वह एक ग़रीब मगर शरीफ़ अंधेका बेटा है।

मगर वह सूरदास का बेटा भी नहीं है। मुझे आज ही मालूम हुआ है कि सूरदास ने उसे घाट पर पड़ा पाया था। जाने किसका बेटा है? किसी भंगी का, या चमार का?

रूप०—बिलकुल झूठ!

यशोदा—बिलकुल सच!

रूप०—मैं कभी नहीं मान सकती।

यशोदा—तुम्हारे न मानने से क्या होता है? अब आया, तो साफ़ कह दूँगी, कि यहाँ न आया करे। बिगड़ता है, तो बिगड़ा करे। मुझे किसी का डर नहीं है।

रूप०—बहुत अच्छा! अब वह यहाँ कभी न आएगा। मैं उसे अभी लिखे देती हूँ।

[रूप० उठकर मेज़ के पास चली जाती है, और एक चिट्ठी लिखती है। इसके बाद नौकर बुलाने की घंटी बजाती है।]

रूप०—मैंने लिख दिया है कि वह यहाँ न आया करें।

यशोदा—बहुत अच्छा किया!

[नौकर आता है।]

रूप०—यह चिट्ठी डाक में डाल दो।

[नौकर चला जाता है।]

रूप०—जहाँ अपमान होता है, वहाँ कोई क्यों आएगा? कोई घरसे बाहर थोड़ा ही बैठा है?

[जाकर सोफ़ेपर बैठ जाती है। यशोदा धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसे मनाना चाहती है।]

यशोदा—बेटी! तुम तो ख़ामख़ाह क्रोध करती हो। मगर इसमें क्रोधकी कौन सी बात है? ज़रा सोचो।

रूप०—(क्रोधसे) क्या सोचूँ ? विद्या आपने मुझे वह दी है, जो भारतवर्ष में बहुत कम लड़कियों को दी जाती है। पुस्तकें प्रोफ़ेसरों ने मुझे वह पढ़ाई हैं, जिनमें स्वाधीनता को संसार की सबसे बड़ी विभूति और जात-पात की ऊँच-नीच को मानव-हृदय का सबसे बड़ा पतन सिद्ध किया गया है। और आप मुझसे आशा उन कामों की रखती हैं जो मेरी अठारहवीं शताब्दी की पड़दादी अपनी अनपढ़ देहाती बेटियों से रखती थी। मैं कहती हूँ, अगर आपकी यही कामना थी, तो आपने मुझे अंग्रेज़ी कालेज की बजाय आर्य समाज की किसी हिन्दी पाठशाला में क्यों नहीं पढ़ाया ? मैं उसी जलवायु में पलती, उसी में बड़ी होती, और बात बातमें आपकी आँख का इशारा देखा करती। न मेरी कोई राय होती, न मेरी कोई मरज़ी होती।

यशोदा—मगर बेटी ! मैं जो कुछ कर रही हूं, तुम्हारे ही भले के लिए कर रही हूं।

रूप०—मेरे भले के लिए ? आप मेरी पसंद और खुशी की ज़रा परवा न करते हुए अपने दिल की इच्छा मुझ पर ज़बरदस्ती ठूँसना चाहती हैं, यह मेरे भले के लिए है ? आप मेरा दिल अपनी मरज़ी तले मसल देना चाहती हैं, यह मेरे भले के लिए है ? आप इसे मेरा भला समझती होंगी, मैं इसे अपना भला नहीं समझती। मैं इसे अपना बुरा समझती हूं।

यशोदा—तो मैंने तुम्हें जो पढ़ाया है, यह मेरा अपराध है ?

रूप०—(रोते हुए) सब मेरा ही अपराध है ! आपका अपराध कैसे हो सकता है ?

[टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। यशोदा उठकर रिसीवर हाथमें लेती है, और सुनती है।]

यशोदा—(क्रोध पूर्ण स्वरसे) कौन है ? हैलो, कौन है ? (ज़ोरसे) मैं पूछती हूँ, कौन है ?

[कोई जवाब नहीं आता, यशोदा टेलीफ़ोन हाथ से रख देती है। घंटी फिर बजती है। यशोदा टेलीफ़ोन उठाती है; इसके साथ ही एक तरफ़ का पर्दा उठता है जहाँ भंडारी टेलीफ़ोन पर बातचीत करता दिखाई देता है। अब टेलीफ़ोन पर इधर यशोदा है, उधर भंडारी है, और दोनों बातें करते हैं।]

इधर

यशोदा—(मुस्करा कर) क्या भंडारी साहब हैं ? कहिए ! ....जी हाँ....मैं बोल रही हूँ।

उधर

भंडारी—मेरा मतलब है, मैंने टिकट ख़रीद लिए हैं। आप ज़रा जल्दी आ जाइए।

इधर

यशोदा—बहुत अच्छा ! हम अभी आ रहे हैं.......जी पाँच मिनट में ! (रूप जूता खोल देती है। यशोदा उससे पूछती है—) यह तुमने जूता क्यों खोल दिया ?

उधर—

[अंतिम वाक्य भंडारी टेलीफ़ोन पर सुनता है, और समझता है कि यह उससे कहा गया है। वह हैरान होता है।]

भंडारी—मैंने जूता कब खोला है ? हैलो—मेरा मतलब है—मैंने जूता नहीं खोला।

इधर

यशोदा—(टेलीफ़ोन पर) हम अभी आ रहे हैं। हैलो...... भंडारी साहब ! हम अभी आ रहे हैं।

रूप०—मगर मैं नहीं जाऊँगी।

यशोदा—(टेलीफ़ोनके रिसीवर पर हाथ रखकर और रूपको सम्बोधन करके) तुम क्यों नहीं जाओगी ?

रूप०—(रुखाई से) अब अगर किसी का जी न चाहे, तो वह क्या करे ? आप चले जाइए। मेरा जी नहीं चाहता। मैं नाटक देखने नहीं जाऊंगी।

यशोदा—(क्रोधमें हाथ रिसीवर पर से हट जाता है) इतना पढ़ लिखकर तुमने यही सीखा है ?

[इधर यशोदा के मुँह से यह शब्द निकलते हैं, उधर भंडारी के कानों में जा पहुँचते हैं।]

उधर

भंडारी—(आश्चर्य से) पढ़-लिखकर मैंने क्या सीखा है ? हैलो......हैलो........हैलो....

इधर

रूप०—जो कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगी।

यशोदा—(टेलीफ़ोन पर हाथ रख कर) मगर बेटी ज़रा सोचो तो सही, अगर तुम न गई, तो भंडारी अपने जी में क्या कहेगा ?

रूप०—जो मरज़ी है, कहे।

[यशोदा जोशमें फिर भूल जाती है कि उसके हाथ में रिसीवर है।]

यशोदा—अच्छा ! बक बक मत करो।

उधर—

भंडारी—बक बक मत करूं ?

इधर—

[यशोदा टेलीफ़ोन का रिसीवर हाथ से रख देती है, इसके साथ ही भंडारी के ऊपर पर्दा गिर जाता है। अब एक तरफ़ यशोदा मुँह फैलाकर बैठ जाती है, दूसरी तरफ़ रूप। रूप अनजाने ही रेडियो खोल देती है, इसके साथ ही दीपक का गीत शुरू हो जाता है—]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

सचमुच तेरी रात, अँधेरी, संकट में हैं प्राण,

बाँध कमरिया, ढूँढ डगरिया, कृपा करे भगवान।

मूरख मन ! होवत—

दुख सुख दोनों एक बराबर, दो दिन के मेहमान,

यह भी देखा वह भी देख ले, दोनों को पहचान।

[पर्दा गिरता है, मगर गीत जारी रहता है।]

चौथा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—संध्या

[रेडियो पर गीत गाया जा रहा है। रायबहादुर हीरालाल अपने घरमें कमर पर हाथ धरे इधर उधर टहल रहे हैं, और दीपक का गीत सुन रहे हैं, मगर वह यह नहीं जानते कि यह गीत गाने वाला उनका बेटा है।]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

दोहा

आनंद नगरिया दूर नहीं मन ! काहे को घबरावत है,

भगवानके घर से तेरे लिए, इक सुख-संदेसा आवत है।

मूरख मन ! होवत—

[गीत की समाप्ति पर रायबहादुर रेडियो बंद कर देते हैं। शामलाल प्रवेश करता है।]

हीरा०—शामलाल ! अभी अभी रेडियो पर किसीने बहुत बढ़िया गीत गाया है–'मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?' उसकी अंतिम पंक्ति थी 'भगवान के घर से तेरे लिए इक सुख-संदेसा आवत है।' मैं सोचता हूँ, क्या सचमुच मेरे लिए कोई सुख-संदेसा आने वाला है ? क्या सच-मुच मेरे जीवन के यह काले दिन समाप्त होने वाले हैं ?

शाम०—हो सकता है, भाई साहब ! हो सकता है !

हीरा०—(हवा में देखते हुए) आज मेरे कानों ने आनंद का संगीतमय संदेसा सुना है। आज मेरा बुड्ढा मन आशाकी लाठी लेकर खड़ा होने का यत्न कर रहा।

शाम०—मैं भी आपको आशा दिलाता हूँ।

हीरा०—मगर शामलाल ! मुझे एक बात बताओ। जो आदमी रुपया लेकर किसी को आशा और सांत्वना देता है, उसकी आशा और सांत्वना का क्या मूल्य है ?

शाम०—क्या मतलब ?

[शामलाल समझता है शायद हीरालालने उसपर चोट की है। इसलिए वह डर जाता है।]

हीरा०—नहीं समझे ? देखो मैं समझाता हूँ, मैंने तुम्हें रुपया दिया, तुमने मुझे सांत्वना दी। इस सांत्वनाका क्या मूल्य है ? वह सांत्वना तुमने मुझे दी नहीं, मेरे हाथ बेची है। मैंने उसे प्रसादके रूप में नहीं पाया, मैंने उसे मूल्य देकर ख़रीदा है। वास्तविक सांत्वना वह है जिसके आगे और पीछे धन का सवाल न हो, जो पैसे के बिना मिले।

शाम०—(और भी सहमकर) मगर भाई साहब ! मैंने तो आप को पैसा लेकर सांत्वना नहीं दी ।

हीरा०—(बात काटकर) यह आदमी जो गा रहा था, अगर इसे रेडियो वाले पैसे न देते, तो वह कभी न गाता । अगर मैं यह रेडियोका सेट न ख़रीदता, तो मैं यह गाना कभी न सुन सकता । इसलिए इस सांत्वना के गीत और गीत की सांत्वना दोनों का दैवी महत्त्व और दैवी मूल्य नहीं है । इन्हें हर कोई ख़रीद सकता है । यह हर पैसे वालेके लिए है ।

[शामलाल शांति की साँस लेता है ।]

हीरा०—शामलाल ! मैंने सुना है, तुमने दिलीप को खोजने के लिए जासूस छोड़ रखे हैं । और मैंने यह भी सुना है कि तुम उनका ख़र्च अपनी गिरह से दे रहे हो । क्या यह सच है ?

शाम०—(सिर झुकाकर) जी हां ।

हीरा०—क्या फ़ायदा ? अब कुछ न होगा । इतने साल बीत गए हैं । अगर मिलना होता, तो मिल चुका होता । मेरा जी कहता है, अब न मिलेगा ।

[नौकर आता है]

शाम०—क्या है ?

नौकर—तार !

[शामलाल तार लेकर पढ़ता है । नौकर चला जाता है ।]

शाम०—(ख़ुशी से) भाई साहब ! बधाई हो, भगवानने सुख का संदेसा भेज दिया ।

हीरा०—क्या है ? दिखाओ तो !

शाम०—मेरे आदमियोंने सूचना दी है कि दिलीप का पता मिल गया ।

हीरा०—मेरा दिल तो अब इतना मुरदा हो गया है, कि यहाँ आशा आती भी है, तो थोड़ी देरमें मर जाती है। यह भी आशा नहीं, आशाकी शक्लमें धोखा है।

शाम०—(सुना अनसुना करके) वह, कहते हैं वह काशी में है, मैं वहाँ जाना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।

हीरा०—तुम्हें आशा है ?

शाम०—मुझे विश्वास है।

हीरा०—अगर तुम्हें विश्वास है तो चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। शायद मेरा सोया हुआ भाग्य काशीमें ही जागने वाला हो।

[प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—दोपहर

[दीपक पूरा सूट पहने घबराए हुए इधर उधर टहल रहा है, और कुछ सोच रहा है। इतने में वह जेबसे एक पत्र निकालता है और उसे ऊँची आवाज़ से पढ़ता है।]

दीपक—" दीपक! मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ, कि तुम कृपया हमारे घर न आया करो—तुम्हारी रूप "

[चिट्ठी को लपेटकर फिर जेब में रख लेता है। कल्लो की माँ का प्रवेश।]

कल्लो०—दीपक ! (दीपक उत्तर नहीं देता । कल्लो की माँ दीपक के निकट आ जाती है, और मातृ-स्नेह से कहती है ।) क्यों दीपक! कहाँ जा रहे हो ?

[दीपक उत्तर दिए बिना बाहर चला जाता है ।]

कल्लो०—(ख़फ़ा होकर) वाह रे। अभी तो सूरदासकी कमाई खा रहा है, अभी से इतना गर्व ! पहले कुछ कमा लो, फिर गर्व भी कर लेना !

[सूरदास का प्रवेश]

सूरदास—क्या है कल्लो की माँ ? क्या हुआ है ?

कल्लो०—(और भी क्रोध से) होना क्या है ? सूट पहनकर खड़ा था। मैंने पूछा, कहाँ जा रहे हो ? मेरी ओर देखा, और खट खट करके बाहर चला गया। मेरी बात का जवाब ही कोई नहीं। जैसे मैं पत्थर हूँ।

सूरदास—(एक कुरसीपर बैठते हुए) कौन बाहर चला गया है, कल्लो की माँ ?

कल्लो०—वही आपका दीपक, और कौन ? आपने उसका माथा कुछ खराब कर दिया है, कुछ खराब कर देंगे।

सूरदास—(मुस्कराकर) और तुमने उसका माथा ख़राब नहीं किया ? ज़रा सा उदास हो जाता है, तो मरने लगती हो।

कल्लो०—झूठी बात ! मैं कभी नहीं मरती ! (थोड़ी देर बाद) इतना भी नहीं बता सकता कि कहाँ जा रहा है ? बता कर चला जाता। मैं रोकती थोड़ी थी।

सूरदास—मैं समझ गया। आज उसका परीक्षा-फल निकलने वाला है, वह देखने जा रहा होगा। तुम पूछ बैठी, कहाँ जा रहे हो ?

उसे गुस्सा चढ़ गया। तुम्हें कितनी बार समझाऊँ, कि जब कोई किसी कामसे बाहर जाने लगे, तो उसे 'कहाँ' पूछनेसे काम ख़राब हो जाता है। और जिसका काम ख़राब होता है, वह बिगड़ता है।

कल्लो०—(घबराकर) अब मुझे क्या मालूम था, कि वह अपना परीक्षा-फल देखने जा रहा है।

सूरदास—चलो अब चिन्ता करने से क्या होता है? भगवान भला करेगा और वह पास हो जाएगा।

[कल्लो की माँ सोचती है, और जवाब नहीं देती।]

सूरदास—कल्लोकी माँ! दीपक पास हो जाय, तो मैं एक सौ एक रुपया ग़रीबों में बांटूँगा।

[कल्लो की माँ चुप रहती है।]

सूरदास—अच्छा कल्लो की माँ! तुम्हें मालूम है, दीपक आजकल सारा सारा दिन कहाँ ग़ायब रहता है?

कल्लो०—मुझे क्या मालूम, कहाँ रहता है? आप तो उसे कुछ कहते ही नहीं। जहाँ चाहे, जाए। जो चाहे, करे।

सूरदास—आज आने दो। ऐसा डांटूँगा कि याद ही रखे।

कल्लो०—आप उसे डाँटेंगे? डाँट चुके आप! आपमें डाँटनेका बूता ही नहीं।

सूरदास—यह तो ठीक है, वह एक बार 'दादा' कह देता है, मेरा सारा क्रोध पानी-पानी हो जाता है।

कल्लो०—मेरा भी तो यही हाल है। वह ज़रा सा मुँह मैला कर ले, फिर मेरे मुँहसे बात ही नहीं निकलती। सारा क्रोध जाने कहां चला जाता है।

सूरदास—तो कल्लो की माँ! तुम ही बताओ, क्या करें?

कल्लो०—मैं बताऊँ। (निकट जाकर) अब उसका ब्याह कर दीजिए। सब ठीक हो जाएगा।

सूरदास—(मुस्कराकर) यह तो मैं भी सोच रहा था, मगर पहले कोई बहू बताओ।

कल्लो०—बहू दीपक ने पसंद कर ली है।

सूरदास—(चौंककर) अरे! क्या सचमुच? कैसी है?

कल्लो०—भले घर की है, पढ़ी-लिखी है, खूबसूरत है।

सूरदास—भगवान्! क्या तू मेरी आँखें दो घड़ीके लिए नहीं खोल सकता? एक बार देख लूँ कि मेरे दीपक की बहू कैसी है?

कल्लो०—सूरदास! जी छोटा न करो।

सूरदास—कल्लो की माँ, दीपककी बहू तुमने देखी है?

कल्लो०—तसवीर देखी है। (सूरदास सोचता है। दरज़ी आकर दरवाज़ेमें खड़ा हो जाता है।) आपने फिर दरज़ी को बुलाया है?

सूरदास—दीपक कहता था, दो नए सूट—

कल्लो०—मैं कहती हूँ, अब दीपकके सूटों का ख्याल छोड़िए और बहू के लिए साड़ियाँ खरीदिए!

सूरदास—(खुश होकर) कल्लो की माँ! मैं अभी जाता हूँ।

दरज़ी—और मुझे क्या हुक्म है?

कल्लो०—तुम दो-चार दिन के बाद आना। अब तो बहुत सा काम निकलने वाला है।

छठा दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—दिन के चार बजे

[कुछ विद्यार्थी टेनिसके रैकट लिए हुए आते हैं।]

एक विद्यार्थी—यार ! उसके सितारे बड़े ज़बरदस्त हैं !

दूसरा विद्यार्थी—तो तुम्हें आशा नहीं थी, कि वह यूनीवर्सिटी में प्रथम रहेगा, सितारे अच्छे थे, प्रथम रह गया।

तीसरा—(पहले से) तुम दीपक की प्रशंसा नहीं करते, उसके सितारों की प्रशंसा करते हो।

पहला—मेरा यह मतलब नहीं था।

दूसरा—मतलब क्यों नहीं था ? द्वेषाग्नि में फुँके जाते हो ! कहने लगे, मतलब नहीं था।

तीसरा—सच्ची बात तो यह है कि दीपक में योग्यता भी है, परिश्रम भी है।

दूसरा—और भलमनसाहत भी है। (पहले से) क्यों दोस्त ! क्या राय है तुम्हारी ?

पहला—भाई ! तुम तो हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गए, जैसे मैं दीपकका दुश्मन हूँ।

दूसरा—दुश्मन तो नहीं हो, मगर उससे जलते ज़रूर हो। उसकी खुशीसे तुम्हें खुशी नहीं होती। उसके दुःखसे तुम्हें दुःख नहीं होता। उसकी तारीफ़ सुनकर तुम्हारा मुँह फीका पड़ जाता है, और तुम्हारी आँखों में तेज नहीं रहता। तुम उसकी बुराई चाहते हो।

[एक तरफ़ देखता है।]

तीसरा—क्या है यार।

दूसरा—दीपक आ रहा है। घर जानेके कष्टसे बच गए। यहीं बधाई दे लेंगे।

[दीपक का प्रवेश]

पहला—(आगे बढ़कर और हाथ मिलाकर) भाई, बहुत बहुत Congratulations.* तुमने कालेज का सिर ऊँचा कर दिया। और हमें खुशी हुई।

दीपक—(झूठी हँसीसे) Thank you ! ×

दूसरा—(हाथ मिलाकर) अब जलसा कब मिलेगा यह बताओ।

दीपक—तुम्हारे यहाँ मिठाई खा चुकने के बाद !

तीसरा—(चिल्लाकर) दुहाई राम की ! यह कभी नहीं हो सकता। हम सिर्फ़ पास हुए हैं, तुम यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आए हो। जलसा तुम्हें देना होगा, हमें नहीं। अगर न दोगे, तो यह अन्याय होगा, जुल्म होगा, अँधेर होगा।

पहला—हम पास हुए हैं, मगर रेंगकर। तुम पास हुए हो, उड़कर। तुमको फ़ीस्ट ÷ देनी होगी। इसके बिना छुटकारा नहीं।

दूसरा—यह न देंगे, तो हम इनके पिता को जा पकड़ेंगे।

दीपक—(बुझे हुए मनसे मुस्कराने का यत्न करते हुए) उनको

---

* बधाई। × धन्यवाद। ÷ भोज।

चाहे पकड़ो, चाहे न पकड़ो, वह फ़ीस्ट अपने आप देंगे और पीछे पड़कर देंगे।

दूसरा—शरीफ़ों की यही निशानी है।

पहला—मगर यार! तुम आज खुश नज़र नहीं आते। क्या बात है? बताओ।

दीपक—तुम तो पागल हो! तुम्हें वहम हो गया है!

पहला—(दूसरे से) ज़रा महाशयजी की आँखें देखो। है कहीं खुशी की चमक? सच बताना?

दीपक—अरे भाई! क्या कभी यह भी सम्भव है कि कोई न केवल पास हो, बल्कि यूनीवर्सिटी में सर्वप्रथम रहे, और फिर भी खुश न हो। बल्कि उदास हो। और फिर उसी दिन, और यह ख़बर सुनने के एक-दो घंटे बाद। मैं कहता हूँ, देखो—

तीसरा—अच्छा देखते हैं। (दीपक से) ज़रा हँसो तो—

दीपक—तुम चाहते हो, मैं पागल हो जाऊँ?

दूसरा—अगर तुम आज भी पागल नहीं हो गए, तो तुम आदमी नहीं हो।

दीपक—तो हम क्या हैं?

तीसरा—या इस दुनियाके पत्थर, या उस दुनियाके देवता।

[सब मित्र हँसते हैं।]

पहला—(दूसरे से) देखिए! अब इनकी—मेरा मतलब है मिस्टर दीपक की—आँखें चमकेंगी।

दूसरा और तीसरा—हम सूत्र नहीं समझते, भाष्य करो। अब क्यों चमकेंगी?

पहला—(इशारा करके) इसलिए कि मिस रूपकुमारी आ रही हैं। समझ गए आप हमारी बात !

[दीपक घबराता है।]

दीपक—तो भाई ! मुझे आज्ञा दो, एक बड़ा ज़रूरी काम याद आ गया है।

[दीपक जाना चाहता है।]

तीसरा—(दीपकका हाथ पकड़कर) क्यों भाई ! क्या मिस रूपकुमारी से बोल-चाल बंद है आजकल ?

दीपक—नहीं तो। (हाथ छुड़ाना चाहता है।)

तीसरा—तो फिर ज़रा ठहरो। एक बधाई और बटोर लो। आज तुम्हारे जीवनमें सुख का सबसे बड़ा दिन है।

दीपक—(भर्राई हुई आवाज़ से) नहीं भाई ! तुम नहीं जानते। आज मेरे जीवनमें सुख का सबसे बड़ा दिन नहीं, दुःख का सबसे बड़ा दिन है।

[दीपक हाथ छुड़ाकर भाग जाता है। तीनों मित्र आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखते हैं। रूपकुमारी प्रवेश करती है, तीनों मित्र हाथ बाँधकर नमस्ते कहते हैं।]

एक विद्यार्थी—मिस रूप ! आपने सुना, बी. ए. का परीक्षा-फल निकल गया।

रूप०—और मैंने यह सुना, कि आप तीनों दोस्त पास हो गए हैं। बधाई हो।

तीनों—Thank you ! मिम रूपकुमारी।

एक—मिस्टर दीपक यूनीवर्सिटी भर में अव्वल रहे।

रूप०—आज उसका बाप कितना खुश होगा, क्या आप यह सोच भी सकते हैं? बधाई देने गई थी, तो खुशी के मारे उनके मुँह से आवाज़ न निकलती थी। आज मैंने उन अंधी आँखोंसे प्रेम के आँसू बहते देखे हैं। कहते थे, आज मेरे जीवन में खुशी का सबसे बड़ा दिन है।

दूसरा—मगर दीपक कहता था, आज मेरे जीवनमें दुःखका सबसे बड़ा दिन है। क्या आप बता सकती हैं कि इसका क्या मतलब है?

रूप०—(घबरा कर) आपसे उसकी कहाँ और कब मुलाक़ात हुई?

तीसरा—अभी तो यहाँ हमारे पास खड़ा था। इधर गया है।

रूप०—तो मुझे आज्ञा दीजिए। मैं कहीं बधाई देने में सबसे पीछे न रह जाऊं।

[प्रस्थान।]

तीसरा—(पहले से) कुछ समझे?

पहला—(सिर हिलाकर) बिलकुल नहीं।

तीसरा—अगर इस घोंघे में इतनी बुद्धि होती तो यूनीवर्सिटीमें अव्वल न रह जाता। दीपक रूप से ख़फ़ा है और रूप उसे मनाने गई है।

[सब का प्रस्थान]

सांतवाँ दृश्य

स्थान–गंगा का किनारा

समय–दिन के साढ़े चार बजे

[दीपक और रूपकुमारी बातें करते हुए प्रवेश करते हैं। दीपक कुछ ख़फ़ा सा है। रूपकुमारी कुछ परेशान सी है।]

दीपक—(इधर उधर देखकर) आख़िर पता तो लगे, कि हम कहाँ जा रहे हैं ?

रूप०—कहीं भी नहीं जा रहे हम !

दीपक—फिर भी—

रूप०—(दीपक को वृक्ष के एक टूटे हुए तने पर बिठाकर) यहाँ बैठ जाओ। (रूपकुमारी स्वयं सामने पड़े हुए दूसरे तनेपर बैठ जाती है।) क्या आनंद के अवसर पर आदमी को साधारण सभ्यता की मर्यादा भी भूल जाती है ?

दीपक—(रुखाई से) मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

रूप०—मतलब यह है कि मैंने तुम्हें बधाई दी थी, तुमने मुझे धन्यवाद भी नहीं कहा। ठीक है, अब तुम बड़े आदमी हो गए हो, तुम्हें हम ग़रीबों की क्या परवाह है ?

दीपक—मैं एक बात कहूँ ?

रूप०—एक नहीं दो कहिए।

दीपक—तुम समझमें न आनेवाली एक पहेली हो। कल साँझ को तुमने मुझे (जेबमें हाथ डालकर) यह पत्र लिखा था,

आज तुम फिर उसी तरह हँस हँसकर बातें कर रही हो जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

[रूपकुमारी जवाब नहीं देती।]

दीपक—यह पत्र मुझे मिल गया है, और मैंने इसे पढ़ लिया है और मैंने इसका मतलब समझ लिया है।

[रूपकुमारी चुप रहती है।]

दीपक—मगर मुझे आश्चर्य है कि तुमने मुझे यह पत्र क्यों लिखा ? मेरा ख्याल है, मेरा कोई दोष नहीं है।

रूप०—(सिर झुकाकर धीरेसे) ठीक है।

[रूपकुमारी ठंडी आह भरती है और उठकर परे चली जाती है। दीपक समझता है, उसके प्रश्नने रूपकुमारी का दिल दुखा दिया है। वह भी उठकर उसके पास चला जाता है और उससे क्षमा माँगता है।]

दीपक—मिस रूप ! अगर मेरी बातसे तुम्हारा दिल दुखा हो, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। मेरा यह मतलब न था। मैं फिर क्षमा माँगता हूँ।

रूप०—(सजल नेत्रों से) तुम्हें मुझसे क्षमा माँगने की क्या पड़ी है ? तुम मुझे बातों के तीर मारो। तुम्हें क्या मालूम, मेरे दिल पर क्या बीत रही है—तुम क्या जानो, मैं रात-भर किस तरह जागती रही हूँ ?

दीपक—मगर इसमें मेरा क्या दोष है ? मुझे बताओ, मैं क्या कर सकता हूँ ? और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं वह करूँगा।

रूप०—कदाचित् तुम्हें मालूम होता कि मुझे किस तरह विवश किया जा रहा है ?

दीपक—किस बात के लिए विवश किया जा रहा है ?

रूप०—(ज़मीन की तरफ़ देखते हुए) अब क्या बताऊँ, किस बातके लिए विवश किया जा रहा है। (ठंडी आह भरकर) भगवान् किसी को स्त्री न बनाए।

दीपक—(एकाएक चौंककर) शायद मिस्टर भंडारी....मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, जो इतना भी नहीं समझता।

[दीपक धीरे-धीरे जाकर एक पेड़ से पीठ लगाकर खड़ा हो जाता है, और अपने आप बोलता जाता है। मगर उसका मतलब यह है कि रूपकुमारी उसकी बात सुन ले।]

दीपक—किसी समय स्त्री का संसार प्रेम और पवित्रता का संसार था। मगर आजकल पढ़ी-लिखी स्त्रियों के संसार में सिंगार और साड़ियाँ हैं, बंगले और बहारें हैं, शान और शोभा है, मगर प्रेम और बलिदान नहीं है। पहले की स्त्री कुछ नहीं चाहती थी, सिर्फ़ प्रेम चाहती थी; आज की स्त्री सब कुछ चाहती है, सिर्फ़ प्रेम नहीं चाहती। उसके लिए प्रेम एक बेकार चीज़ है।

रूप०—(आगे बढ़कर) क्या तुम मेरी बातपर विश्वास करोगे?

दीपक—(गम्भीरता से) कहो। मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करूंगा।

रूप०—तुम पुरुष दुनिया भरकी पुस्तकें पढ़ सकते हो, मगर नारी-हृदय नहीं पढ़ सकते।

दीपक—मगर चिट्ठियाँ तो पढ़ सकते हैं।

रूप०—यह चिट्ठी मैंने अपने आप, अपनी मरज़ी से नहीं लिखी थी। मुझसे लिखवाई गई थी।

दीपक—(खुश होकर) तो यह तुमने नहीं लिखी थी? रूप! यह तुमने अपने आप नहीं लिखी थी!

रूप०—(एक ही समय में हँसते और रोते हुए) नहीं!

दीपक—तो मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें ग़लत समझा था, मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। मगर एक बात और बता दो। तुमसे यह चिट्ठी क्यों लिखवाई गई? तुम्हारी माँ को मुझसे क्या शिकायत है? उसने मुझमें क्या अवगुण देखा है?

रूप०—बता दूँगी। मगर आज नहीं, फिर किसी दिन। आज मेरे मन से बोझ उतरा है, मैं तुम्हारे मन पर बोझ नहीं डालना चाहती। यह अनर्थ होगा। मैं अनर्थ न करूंगी?

[दीपक उसे उस पेड़के तने पर बिठा देता है, जहां उसे पहले रूपकुमारी ने बिठाया था, और आप उसके सामने बैठ जाता है।]

दीपक—अगर तुम्हारे मन से बोझ उतर गया है, तो मेरे मन से भी बोझ उतारो।

रूप०—आज नहीं—कल!

दीपक—(आग्रह से) कल नहीं, आज! आज नहीं, इसी समय। बोलो। बताओ। मेरा दिल दुखी है।

रूप०—मैं कहती हूँ, मेरा आज का दिन ख़राब न करो।

दीपक—मैं भी यही कहता हूँ, कि मेरा आजका दिन ख़राब न करो। आजका दिन बड़ा क़ीमती है।

रूप०—(सकोच से) अच्छा! माँ जी कहती थीं, कि वह ....

दीपक—वह क्या?

रूप०—(रुक रुककर) वह....कहती....थीं, कि तुम....

दीपक—हाँ हाँ बोलो....मैं क्या?

रूप०—वह कहती थीं, कि तुम····(फिर रुक जाती है।)

दीपक—यह कि मैं सूरदास की संतान हूँ। रूप, संसार चाहे जो कुछ कहे, मगर मैं सच कहता हूँ कि सूरदास जैसा नेक, सच्चा,

खरा, प्यार करने वाला बाप बहुत कम लोगों को मिला होगा। मुझे सूरदास का बेटा होने पर गर्व है। और वह देवता है।

रूप०—मगर वह कहती हैं वे तुम्हारे पिता नहीं हैं।

दीपक—(चौंककर) क्या ? वे मेरे पिता नहीं हैं ? मैं उनका पुत्र नहीं हूँ ? यानी....

रूप०—मगर मेरा मन कहता है कि यह झूठ है।

दीपक—क्या यह हो सकता है कि जिस आदमी को मैं आज तक अपना पिता जानता, मानता, समझता रहा हूँ, वह मेरा पिता न हो ? तो फिर मैं किसका पुत्र हूँ ? क्या इस संसार में यह भी संभव है ? क्या इस दुनिया में यह भी हो सकता है ?

रूप०—मैं कहती हूँ—तुम उन्हीं के पुत्र हो !

दीपक—(सुना अनसुना करके) मगर दुनिया ने इससे भी अद्भुत बातें देखी हैं। यह असंभव नहीं कि वह मेरे पिता न हों। तो ऐसी अवस्था में........

रूप०—मेरा ख्याल है, मेरी माँ को किसी ने धोखा दिया है।

दीपक—(चिन्ता को दूर हटाकर निश्चयात्मक रूप से) सुनो रूप ! (रूप दत्तचित्त हो जाती है।) मैं जानता हूँ कि यह मेरे किसी दुश्मन की शरारत है। मगर फिर भी जब किसी ने तुम्हारे और तुम्हारी माँ के मन में यह संदेह बिठा दिया है, तो इसे दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। और इसे दूर करने की एक ही विधि है—मैं अपने बाप से जाकर पूछूँ कि तुम ही मेरे बाप हो या नहीं ? अभी फ़ैसला हो जाएगा।

[दीपक उठकर खड़ा हो जाता है।)

रूप०—मगर मुझ से प्रतिज्ञा करो। (उठ खड़ी होती है।)

दीपक—(मुस्कराकर) बहुत अच्छा ! लो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अगर मैं उनका पुत्र न निकला, तो मैं इस गंगा में डूबकर आत्म-हत्या न करूँगा, स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हें सब कुछ अपने मुँह से बता दूँगा। मगर सवाल यह है कि मैं तुम्हें कहाँ मिल सकूंगा।

रूप०—(मतलब समझकर) मैं अपने मकान के साथ वाले बाग़ीचे में हूँगी।

[दोनों चलते हैं।]

रूप०—मेरी एक प्रार्थना है। मेरा पत्र मुझे लौटा दो।

दीपक—(जेब में हाथ डालकर) तुम्हारा पत्र तुम्हें लौटाया जा सकता है। (पत्र दे देता है।) मगर क्या करोगी ?

रूप०—(पत्र फाड़कर फेंक देती है।) कुछ नहीं।

दीपक—अफ़सोस, हमारे पहले प्रेम-पत्र का यह परिणाम !

रूप०—प्रेम-पत्र का यह परिणाम न होता, तो यह परिणाम हमारे प्रेम का होता। अब काग़ज़ फटा है, तब दिल फटते।

दीपक—तुम्हें भय था कि मैं यह पत्र किसी को दिखा न दूँ।

रूप०—(मुस्कराकर) तुम्हें भय रहता कि यह पत्र कोई देख न ले।

[दोनों चले जाते हैं। वृक्षों के पीछे से दो जासूस निकलते हैं।]

एक—अब तो तुमने लड़की के मुँह से भी सुन लिया। अब बोलो क्या ख़याल है तुम्हारा ?

दूसरा—भई ! मान लिया तुम्हारा ख़याल ठीक है। मगर यह रायबहादुर हीरालाल का बेटा है, इसका क्या प्रमाण है ?

पहला—इसका प्रमाण भी मिल जाएगा। यह काग़ज़ के टुकड़े उठा लो।

दूसरा—क्या करोगे ?

पहला—शायद किसी काम आएँ !

[प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास के घर के पास बाज़ार

समय—संध्या-काल

[सूरदास और भंडारी साहब]

भंडारी—सूरदास ! आज तुमने बहुत रुपया दान किया।

सूरदास—नहीं भाई ! बहुत दान तो नहीं किया। और मैं ग़रीब आदमी, बहुत दान कर भी क्या सकता हूँ ? मुझे भगवान् ने खुशी दी है। मैंने सोचा, चलो मैं भी थोड़ी सी खुशी चार आदमियों में बाँट दूँ। तुम नहीं जानते आज मैं कितना खुश हूँ। आज मेरी खुशी मेरे मन में नहीं समाती। आज मेरा संसार नाच रहा है। आज मेरे दीपक ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया है।

भंडारी—इसमें क्या शक है ! मेरा मतलब है, तुम्हारा दीपक बड़ा होनहार है। उसने अव्वल रहकर परीक्षा पास की है।

सूरदास—मगर अभी बड़ी परीक्षाएँ तो आगे आने वाली हैं। चार दिन के बाद उसका ब्याह होगा, अगर उस समय वह नेक पति बने, तो मैं समझूँगा, वह परीक्षा में पास हुआ। चार साल के बाद उसके यहाँ सन्तान होगी, अगर उस समय वह सहनशील पिता बने,

तो मैं जानूँगा कि मेरा परिश्रम सफल हुआ। जीवन के क्षेत्र में पग पग पर पापके प्रलोभन सुंदर रूप धारण करके उसके सामने आएँगे, अगर उस समय वह उनको पाँव-तले मसल सके, तो मैं कहूँगा कि वह वीरात्मा है और जीवन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। उन बड़ी परीक्षाओं के सामने यह परीक्षा तो बहुत छोटी है।

[जासूस आकर एक तरफ़ छुप जाते हैं।]

भंडारी—सूरदास ! मैं समझता था, तुम सिर्फ़ रागी और अभिनेता हो, मगर आज पता लगा कि तुम तत्त्ववेत्ता भी हो। जब मैं इंगलैंड में था, तो मैंने वहाँ भी एक तुम जैसा आदमी देखा था। मगर उसके बेटे ने तो बाप से बुरा बर्ताव किया था।

सूरदास—मगर भाई ! मेरा दीपक तो ऐसा लड़का नहीं जो मेरे साथ बुरा बर्ताव करे।

भंडारी—तुम्हारा दीपक तो हीरा है, सूरदास ! हीरा !

एक जासूस—(दूसरे से—धीरे से) सुना हीरालाल का नाम ले रहा है।

दूसरा—(धीरे से) वह हीरा कह रहा है, हीरालाल नहीं कह रहा।

[कई आदमियों का एक साथ प्रवेश]

दो आदमी—सूरदास बधाई हो भई !

सूरदास—तुम्हें भी बधाई हो भाई ! दीपक जितना मेरा बेटा है, उतना ही तुम्हारा भी है।

[जासूस एक दूसरे की तरफ़ अर्थ-पूर्ण-दृष्टि से देखते हैं।]

तीसरा—हम तो सुनकर निहाल हो गए, सूरदास ! छाती फूल गई। सिर ऊँचा उठ गया।

दूसरा—सचमुच हम निहाल हो गए।

सूरदास—तुम निहाल न होगे, तो और कौन होगा? यह सब तुम्हारे ही पाँव की बरकत है।

तीसरा—जानते हो, हम क्यों आए हैं?

चौथा—हम जलसा माँगने आए हैं।

पहला—बोलो, कब दोगे?

दूसरा—टालने से काम न चलेगा। इतना पहले समझ लो।

सूरदास—नहीं भैया! टालने की कौन सी बात है? जब चाहो, ले लो। भगवान ने ऐसा अवसर दिया है, तो क्या मैं पीछे हट जाऊँगा? बड़े शौक़ से जलसा लो भाई। यह तो मेरा सौभाग्य है। आदमी ऐसे ऐसे जलसे हर रोज़ देता रहे।

भंडारी—हमें भी याद रखना सूरदास जी! कहीं भूल न जाना। नहीं हमें सारी उमर शिकायत रहेगी।

सूरदास—नहीं भैया! तुम्हें कैसे भूल जाऊंगा? मगर एक बात है, मैं अंधा आदमी! मुझसे तो यह प्रबंध नहीं हो सकेगा। रुपया मुझ से लो, प्रबंध आप करो। मंजूर?

भंडारी—मंजूर! प्रबंध मैं करूंगा। मुझे खुशी होगी।

पहला—तो कब? आज या कल? मेरा तो ख्याल है आज ही कर दो। तुरत दान—महा कल्याण।

सूरदास—भाई आज तो कठिन है। अभी दीपक घर नहीं आया। कहीं यार-दोस्तों ने घेर लिया होगा। आता है, तो उसके साथ सलाह करके आपको सूचना दे दूँगा। उसके दोस्तों और कालेज के प्रोफ़ेसरों को भी बुलाना होगा। और मेरी कंपनी के आदमी भी तो आएँगे। इसलिए आज नहीं हो सकता। क्यों भाई?

तीसरा—ठीक है, आज नहीं हो सकता। कल या परसों पर रखो, ताकि सब लोग आ सकें, और दिलके हौसले पूरे हों।

सूरदास—अच्छा भाई! (हाथ बाँधकर) आप लोगोंने बड़ी कृपा की। आपका धन्यवाद! अब मैं चलता हूँ।

भंडारी—हाँ, सूरदासजी! तुम चलो। आज तुम्हारा बधाइयाँ बटोरनेका दिन है। मगर दीपक से मुलाक़ात न हुई।

सूरदास—(जाते जाते) कल हो जाएगी।

[सूरदास चला जाता है। भंडारी उसकी तरफ़ देखता रहता है।]

भंडारी—(मुड़कर) खूब आदमी है। आपने देखा, आज कितना खुश है?

पहला—फूला नहीं समाता।

दूसरा—बेटेपर जान देता है।

भंडारी—एक दूसरे अंधे है, जो माँग माँगकर खाते हैं, और समाजका भार बने हुए हैं। एक यह अंधा है, जो जीवन-क्षेत्र में सूरमा सिपाही के समान वीरता से लड़ रहा है और अपने बेटे को पालने के लिए बुढ़ापेमें भी इतना काम कर रहा है। अपने कर्त्तव्य का जितना इसे ध्यान है, उतना ध्यान अगर सभी को हो, तो संसार स्वर्ग-धाम बन जाए, और दुनियासे दुःखों का नाम-निशान भी मिट जाए।

[सब का प्रस्थान]

नवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—रात

[सूरदास साड़ियों के ढेर के पास एक आराम-कुरसी पर बैठा साड़ियों को टटोल टटोल कर देख रहा है, और अपना पुराना गीत गा गाकर खुश हो रहा है।]

गीत

तेरी गठड़ी में लागा चोर, मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा !
नींद में माल गँवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,
फिर पीछे कछु नाहीं बनेगा, लाख मचावे शोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।

[कल्लो की माँ का प्रवेश]

कल्लो की माँ—यह आप आज इतना पुराना गीत क्या ले बैठे हैं? छोड़िए इसे।

सूरदास—कल्लो की माँ! आज मुझे बीस साल पहले का वह दिन याद आ रहा है, जब मुझे दीपक घाट पर पड़ा मिला था। उस दिन मैं ग़रीब था, अकेला था, उदास था। मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन मैं यही गीत गा रहा था। मानों इसी गीत ने मुझे दीपक दिया था! आज दीपक ने बी० ए० की परीक्षा पास की है, आज मैंने दीपक के ब्याह की तैयारियाँ शुरू की हैं, आज मेरे मन ने

कहा—वही गीत गाओ, और मैं वही गीत गाने लगा। आज मैं बहुत खुश हूं।

कल्लो०—यह गीत न गाइए। इसे सुनकर मेरे मन में हौल उठने लगता है। कोई और गीत गाइए, जिसमें खुशी और आनंद हो।

सूरदास—मैं सोचता हूँ, अगर उस दिन इसे मैं न उठा लाता, तो मेरा जीवन कितना उदास, कितना फीका, कितना रस-रहित होता! मैं आज तक उसी घाटपर बैठकर दिनको भिक्षा माँगता, रातको उसी झोंपड़े में आकर सो रहता। आज मैं पाँच सौ रुपया वेतन पाता हूँ, आज मैं गृहस्थी हूँ। आज मेरा जीवन कितना आशापूर्ण, कितना आनंदमय है। यह सब दीपकके कारण है। अगर दीपक न होता तो यह कुछ भी न होता।

कल्लो०—और मैं सोचती हूँ, अगर उस दिन उसे आप न उठा लाते, तो उसका क्या हाल होता? आपने उसे बचा लिया। वर्ना घाटपर ठंड थी, बैल थे, गीदड़ थे।

सूरदास—नहीं कल्लो की माँ! आदमी कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता है परमात्मा करता है। यह परमात्माकी लीला है। परमात्माका शुक्र करो।

[सूरदास साढ़ियों पर हाथ फेरने लगता है। दीपक आकर एक कोने में छिप जाता है।]

सूरदास—कल्लो की माँ! तुम चुप क्यों हो गई? तुम क्या सोच रही हो?

कल्लो०—मैं यह सोच रही हूँ, कि अब जब दीपक के ब्याह की बात चीत शुरू होनेवाली है, तो उसके माँ बाप का सवाल उठना ज़रूरी है।

[दीपक चौकन्ना हो जाता है ।]

सूरदास—क्या मतलब ?

कल्लो०—मेरा यह मतलब है, क्या आप कह सकेंगे कि दीपक आपका बेटा है ?

सूरदास—मैं साफ़ कह दूँगा कि मुझे घाट पर पड़ा मिला था ! मैंने उठा लिया ।

[दीपकके मुँह का रंग उड़ जाता है ।]

सूरदास—और मैं साफ़ कह दूँगा कि दीपक मेरा पाला हुआ है ।

कल्लो०—तो यह संबंध हो चुका !

सूरदास—क्यों कल्लो की माँ ! इसमें क्या हर्ज है ?

कल्लो०—बहुत हर्ज है । माँ-बाप, जात-पात, घर-बार के पते बिना कौन अपनी बेटी ब्याह देगा ? ज़रा सोचिए ! और फिर दीपकका क्या हाल होगा ?

[दीवार-घड़ी साढ़े आठ बजाती है ।]

कल्लो०—लो बातों ही बातों में आपके थियेटर जाने का समय हो गया । खाना ले आऊँ ?

सूरदास—(गहरे विचार में डूबे हुए) ले आओ ।

[कल्लो की माँ खाना लेने जाती है । दीपक धीरे-धीरे सूरदास के पास आकर खड़ा हो जाता है और भर्राई हुई आवाज़ में कहता है—]

दीपक—दादा !

सूरदास—(चौंककर) कौन ? दीपक ! तुम इस समय तक कहाँ थे ? क्या तुम्हें मालूम है, तुम बी. ए. में सारे प्रांत में अव्वल रहे हो । आओ, मेरे निकट आओ । आओ, यहाँ बैठ जाओ ! बेटा ! आज मैं बड़ा खुश हूँ । (गद्गद होकर) आज मैं बड़ा खुश हूं ।

दीपक—(उदासी से) दादा !

सूरदास—पहले मेरे पास आकर मेरी एक बात सुन लो !

दीपक—पहले मेरी बात दादा ।

सूरदास—(एक साढ़ी उठाकर) देखो ! यह क्या है ?

दीपक—मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ ।

सूरदास—(साढ़ी रखकर) अच्छा पूछो—क्या पूछते हो तुम ?

दीपक—मैं पूछता हूँ, क्या मैं आप ही का बेटा हूँ ?

सूरदास—(चौंककर) बेटा ! यह तुम आज मुझसे क्या पूछ रहे हो ? क्या तुम्हें कुछ संदेह है ?

दीपक—हाँ, मुझे संदेह है। इसी लिए पूछता हूँ, साफ़ साफ़ कहिए, क्या मैं आप ही का बेटा हूँ........

सूरदास—(भरी हुई आवाज़ में) यह तो सारी दुनिया जानती है।

दीपक—और आप ही मेरे पिता हैं ?

सूरदास—यह तुम भी जानते हो।

दीपक—मगर यह झूठ है।

सूरदास—(हताश होकर) दीपक सुनो।

दीपक—आप सच क्यों नहीं कहते ? आप झूठ बोल रहे हैं।

सूरदास—(हाथ फैलाकर) दीपक ! आज तुम्हें क्या हो गया है ? आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ! ऐसी बातें तुमने आज तक न की थीं।

दीपक—अभी अभी आप कल्लो की माँ से बातें कर रहे थे, वह मैंने सुन ली हैं। फिर आप मुझे अब भी क्यों धोखा दे रहे हैं ? धोखा देने का समय चला गया।

[सूरदास निरुत्तर होकर थोड़ी देर के लिए चुप रह जाता है। इस के बाद ठंडी साँस भरता है और एक पग आगे बढ़ता है।]

सूरदास—तो तुमने सब कुछ सुन लिया है–अच्छा पूछो। अब मैं तुम्हारे हर एक प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हूँ। अब मैं तुम से कोई बात न छिपाऊंगा। मगर बेटा! सच देखने के लिए पत्थर की आँखों की, और सच सुनने के लिए लोहे के दिल की ज़रूरत है। पहले सोच लो क्या तुम सच सुन सकोगे?

दीपक—आज मैं सब कुछ सुन सकूंगा।

सूरदास—तो पूछो, क्या पूछते हो?

दीपक—मैं कौन हूँ?

सूरदास—भगवान् जानता है, मैं कुछ नहीं जानता।

दीपक—और मेरे माता पिता कौन हैं?

सूरदास—मैं यह भी नहीं जानता।

दीपक—और मेरी ज़ात क्या है?

सूरदास—(सिर झुकाकर) मैं यह भी नहीं जानता।

दीपक—(ज़रा क्रोध से) तो यह बात आपने इतने साल तक मुझसे क्यों छिपाए रखी? आप तो कहा करते थे कि तेरी माँ ऐसी थी, और वैसी थी। और आपने सदा मुझे यही बताया है कि मैं आपका बेटा हूँ।

सूरदास—(दीपक की बात का उत्तर न देकर) बीस साल गुज़रे, एक दिन सांझ के समय गंगा के घाट पर एक बच्चा पड़ा था। उसे एक अंधे के प्यार ने उठाया, पढ़ाया और बड़ा किया। आज वह बच्चा दीपक है, आज वह अंधा सूरदास है!

दीपक—(भर्राई हुई आवाज़) तो मैं अनाथ हूँ?

सूरदास—(व्याकुल होकर) नहीं मेरे बच्चे! तू अनाथ नहीं है।

तू अपने आपको अनाथ क्यों कहता है? अभी तेरा अंधा बाप जीता है। (हाथ फैलाकर आगे बढ़ता है।) दीपक!

दीपक—(हवा में देखते हुए) एक घंटा पहले तक मैं भी यही समझता था, मगर अब—मेरा कोई बाप नहीं है, मेरी कोई माँ नहीं है, मेरी कोई जाति नहीं है। मैं संसार की भीड़ में अकेला और पराया हूँ। मेरा अपना कोई नहीं है।

सूरदास—(टूटे हुए साहस से) यह न कह दीपक। यह न कह।

दीपक—भगवान् जाने! मेरे माता-पिता ने मुझे घाट पर क्यों फेंक दिया? शायद उनके पास मेरे पालने के लिए धन था। शायद उनके पास मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था—शायद मैं पाप की संतान हूँ।

सूरदास—(रुँधे हुई गले से) दीपक! तू ऐसी हृदय-बेधक बातें क्यों सोचता है? तू मेरा बच्चा है। तू इस अंधे बाप के बुढ़ापे की लाठी है। और मैं तेरा बाप हूँ। मेरे पास बाप का प्यार है।

दीपक—(सूरदास के चरण छूकर) दादा!

सूरदास—(उदासीसे) जीता रह बेटा।

दीपक—(भर्राए हुए गले से) नमस्कार दादा!

[सूरदास दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है। सूरदास घबराता है।]

सूरदास—(रुँधे हुए गलेसे) दीपक!

दीपक—भगवान् से प्रार्थना कीजिए कि मुझे मेरा बाप मिल जाए, और मैं संसार में अनाथ न रहूँ, और मैं दुनिया के सामने अपनी जाति लेकर खड़ा हो सकूं।

[दीपक तेज़ी से बाहर निकल जाता है।]

सूरदास—(हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए) दीपक ! क्या तू जा रहा है ! दीपक ! इधर आ ! मैं तेरा अंधा बाप कहता हूँ, मेरे पास आ। दीपक, अरे नादान, तू अपने बाप के प्यार को ठुकराकर बाप को ढूँढने कहाँ जा रहा है ?—दीपक ? (ज़ोर से) दीपक ज़रा ठहर—(जाकर अपने संदूक़ से कवच निकालता है।) यह देख ! जिस दिन तू मुझे मिला था, उस दिन तेरे गले में यह कवच पड़ा था। शायद इससे तुझे कुछ पता लग सके। ले देख ! तू बोलता क्यों नहीं ? क्या तू चला गया ? (कवच मेज़ पर रख देता है।) दीपक !! (ज़ोर से) दीपक !! (और भी ज़ोर से) दीपक ! ! ! तू कहाँ है ? ज़रा इधर आ। ज़रा मेरी बात सुन। दीपक ! दीपक !!

[जल्दी जल्दी आगे बढ़ता है, और कुरसी से टकराकर गिर पड़ता है। कल्लो की माँ खाना लेकर आती है, और घबरा जाती है। वह खाना मेज़ पर रख देती है, और सूरदास को सँभालती है। सूरदास कराहता है।]

कल्लो०—कितनी बार कहूँ कि ज़रा धीरे चला कीजिए, अब गिर पड़े न ! क्यों इतनी जल्दी चले थे ? चोट तो नहीं आई कहीं ?

सूरदास—(रोते हुए) कल्लो की माँ ! मैं गिरा नहीं हूँ। दीपक मुझसे गुस्से होकर चला गया है।

कल्लो०—आपने कुछ कह दिया होगा। (कुरसी पर बिठा देती है।) बैठिए। आपने उसे क्या कहा, जो वह गुस्से होकर चला गया ?

सूरदास—मैंने कुछ नहीं कहा। वह कहता है मैं अपने बाप को ढूँढूँगा।

कल्लो०—(आश्चर्य से चौंककर) तो क्या आपने उससे सब कुछ

कह दिया ? क्या कहने की ज़रूरत थी इस समय ? दो दिन चुप रहते तो क्या हर्ज था ?

सूरदास—मैंने कुछ नहीं कहा। जब हम बातें कर रहे थे, वह छुप कर सब कुछ सुन रहा था। जब तू खाना लेने गई वह मेरे पास आया, और मुझे सब कुछ बताना पड़ा। मगर कल्लो की माँ! तू ही बता! मेरा इसमें क्या दोष है? और तू ही बता, अब मैं क्या करूँ ?........(कराहकर) बता मैं क्या करूं ?

कल्लो०—करना क्या है ? चुप करके बैठे रहिए। जब उसके सिर से क्रोध का भूत उतर जाएगा, तो अपने आप घर आ जाएगा।

सूरदास—नहीं कल्लो की माँ ! मेरा मन कहता है कि वह अब घर नहीं आएगा।

कल्लो०—तो जाएगा कहाँ ? उसे बाप का जो प्यार यहाँ मिल सकता है, वह संसार में और कहीं नहीं मिल सकता।

सूरदास—कल्लो की माँ! संसार में लोग स्त्री को चाहते हैं, बाल-बच्चों को चाहते हैं, खेल-तमाशे को चाहते हैं। मगर बुड्ढे बाप के प्यार को कोई नहीं चाहता ! यह दुनिया में सबसे छोटी चीज़ है।

[बाहर मोटर के हार्न की आवाज़]

सूरदास—कौन है, कल्लो की माँ ?

कल्लो०—कंपनी की गाड़ी आई है !

सूरदास—कंपनी की गाड़ी लौटा दो, आज मैं नहीं जा सकता।

कल्लो०—क्यों नहीं जा सकते ?

सूरदास—अब मुझे नौकरी की क्या ज़रूरत है ? मेरा दीपक

चला गया है। इसलिए गाड़ी को लौटा दो। कहो अब मुझे गाड़ी न भेजा करें।

कल्लो०—(ज़रा क्रोध से) अरे बाबा ! दीपक कहीं नहीं गया, और कहीं नहीं जा सकता। घंटे दो घंटे में लौट आएगा। आप थिएटर जाएँ, और अपना काम करें।

सूरदास—(आशापूर्ण स्वर में) तुम कहती हो, लौट आएगा। (सोचकर) तुम ठीक कहती हो, वह ज़रूर लौट आएगा। वह जानता है, कि अगर वह न लौट आया तो सूरदास रो रो कर मर जाएगा। और वह यह भी जानता है, कि आज सूरदास का खुशी का दिन है, आज उसके रोने का दिन नहीं है। वह इतना निठुर नहीं है। वह मेरी खुशी को ख़राब नहीं करेगा। वह आएगा। तू ठीक कहती है।

[एक पड़ोसी का प्रवेश।]

सूरदास—कौन है भाई।

पड़ोसी—सूरदासजी ! बधाई हो।

सूरदास—काहे की बधाई भाई ?

पड़ोसी—अरे ! अब क्या यह भी कहना होगा ?

सूरदास—(कड़क कर) तुम मुझे काहे की बधाई देने आए हो ?

पड़ोसी—वाह ! दीपक के पास होने की।

सूरदास—(टूटे हुए दिल से) तुम्हें भी बधाई हो भाई ! मगर...

पड़ोसी—(घबराकर) क्यों सूरदास !

सूरदास—(अपने आपको सँभालकर) कुछ नहीं। तो कल्लो की माँ, अब मैं थियेटर चलूँ, बहुत देर हो गई है। (पड़ोसी से) मुझे माफ़ करना। आज मेरा जी ठीक नहीं।

[सूरदासका प्रस्थान पड़ोसी कुछ देर खड़ा सोचता रहता है, इसके बाद धीरे धीरे चला जाता है।]

कल्लो०—भगवान्! तू किसी को संतान देता है, किसी को नहीं देता। मगर जिनको संतान नहीं देता, उनको संतान का इतना मोह क्यों दे देता है। और अगर मोह भी दे देता है, तो फिर उनसे संतान जुदा क्यों करता है?

[रायबहादुर हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश। कल्लो की माँ चौंकती है।]

हीरालाल०—क्या सूरदास जी घर पर ही हैं? हमें उनसे मिलना है। और हमारा काम बड़ा ज़रूरी है।

कल्लो०—वह तो थियेटर चले गए। रात को दो बजे लौटेंगे। कल सवेरे आइए।

एक जासूस—और उनका बेटा दीपक कहाँ है?

कल्लो०—वह भी कहीं बाहर गया है!

शाम०—कब तक लौटेगा?

कल्लो०—बता कर नहीं गया कि कब आएगा, कब नहीं आएगा? क्या काम है आपको उस से?

[कल्लो की माँ कवच उठाना चाहती है।]

दूसरा जासूस—यह क्या है?

[जासूस कवच लेकर शामलाल को देता है।]

शाम०—(जोश से) देखिए भाई साहब! दिलीप का कवच! यह वही है।

हीरा०—(कल्लो की माँ से) यह कवच यहाँ कैसे आया तुम्हारे घर में? जल्दी जवाब दो।

कल्लो०—(डरकर) जब दीपक छोटा था, तो यह कवच उसके गले में पड़ा था।

[हीरालाल कवच को हाथ में लेकर खुशी से इधर उधर टहलता है। शामलाल दीपक के बचपन का फ़ोटो देखकर चिल्ला उठता है !]

शाम०—यह देखिए दिलीप की तस्वीर !

[कल्लो की माँ हैरान होती है।]

हीरा०—(तस्वीर के पास जाकर) भगवान् ! आख़िर बीस साल के बाद तूने बाप के हृदय की पुकार सुन ली।

[कल्लो की माँ और भी हैरान होती है।]

शाम०—भगवान बड़ा कृपालु है।

हीरा०—मगर दिलीप इस समय कहाँ है ?

कल्लो०—अपने बाप को ढूँढ़ने गया है। भगवान जाने, यहाँ लौट कर आता भी है या नहीं आता।

शाम०—(जासूसों से) क्या तुम्हें मालूम है, वह यहाँ से कहाँ जा सकता है ?

एक जासूस—जी हाँ ! हमें मालूम है। आइए !

शाम०—(दीपक की जवानी का फ़ोटो देखकर) और यह किसकी तस्वीर है ? मालूम होता है शायद....

हीरा०—क्या यह तस्वीर दीपक की है ?

कल्लो०—(डरकर) हां दीपक की है ! मगर........मगर आप यह सब कुछ क्यों पूछ रहे हैं ?

एक जासूस—(एक एक शब्द पर ज़ोर देकर) इसलिए कि यह दीपक इनका बेटा है ! और यह उसे बीस साल से खोज रहे थे।

कल्लो०—(और भी सहमकर) और यह कौन हैं ?

दूसरा जासूस—यह मैं बाद में कहूँगा। तुम एक बात बताओ। दीपक इस समय कहाँ होगा? हम उसे मिलना चाहते हैं। और यह उनके पिताजी घबरा रहे हैं।

कल्लो०—आज उसे पहली बार मालूम हुआ है कि वह सूरदास का बेटा नहीं है। इसलिए वह सूरदास से ख़फ़ा हुआ कि तुमने यह सब कुछ मुझसे क्यों छुपाए रखा। मगर इसमें सूरदास का ज़रा भी दोष नहीं है। उसने उसे बेटों की तरह पाला है।

[हीरालाल, शामलाल और जासूस सब चले जाते हैं। कल्लो की माँ हताश होकर एक कुरसी पर बैठ जाती है और निराशा में अपने आप से बड़बड़ाने लगती है।]

कल्लो०—भगवान्! आज तू यह क्या लीला दिखा रहा है? आज सूरदास कहता था, यह मेरे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन है। क्या यही दिन उसके जीवन में दुख का सब से बड़ा दिन बन जाएगा? बीस साल तक दीपक का बाप नहीं आया, आज एक आदमी आता है और कहता है, मैं उसका बाप हूँ। तो क्या दीपक चला जाएगा? क्या आज सूरदास का संसार सूना रह जाएगा? थोड़ी देर पहले वह कितनी खुशी से ग़रीबों को रुपए बाँट रहा था, और समझता था, आज वह भी भाग्यवान है। और इस समय वह अपनी मरी हुई आशा की तरफ़ देख रहा है और सोच रहा है, क्या यह फिर से जी सकती है। भगवान्! अभी तो उसको दिए हुए ग़रीबों के आशीर्वाद हवा में उसी तरह गूंज रहे हैं! अभी तो शहर के लोग उसे मुबारकबाद देने आ रहे हैं।

[दो पड़ोसियोंका प्रवेश।]

पहला—कल्लो की माँ, हमें जलसे में बुलाना न भूलना।

कल्लो०—(मरे हुए दिलसे) नहीं भूलूँगी।

दूसरा—और हमें भी।

कल्लो०—(उसी तरह) अच्छा।

पहला—(हैरान होकर) मगर आज तुम इतनी उदास क्यों हो?

कल्लो०—कौन कहता है, मैं उदास हूँ। मैं उदास नहीं हूँ। मैं उदास नहीं हूँ। (फूटकर रो पड़ती है।)

दसवाँ दृश्य

स्थान—रूपकुमारी का बगीचा

समय—रात

[दीपक और रूपकुमारी]

रूपकुमारी—उन्होंने क्या कहा?

दीपक—(ठंडी आह भर कर) यह कि इस नीले-आकाश तले कोई बात भी असंभव नहीं है!

रूप०—तो मेरी माँ का विचार ठीक निकला?

दीपक—(हवा में देखते हुए) मैं कौन हूँ? किस का बेटा हूँ? मेरी जाति क्या है? संसार के इन साधारण प्रश्नों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। मैं सूरदास का बेटा भी नहीं हूं।

रूप०—मगर तुम, तुम तो हो?

दीपक—शायद अब मैं........मैं भी न रहूँ!

रूप०—(भर्राई हुई आवाज़ में) दीपक !

दीपक—मेरे मिलने-जुलने वालों में कई ऐसे हैं, जिनके माँ-बाप अमीर हैं। कई ऐसे हैं, जिनके माँ-बाप ग़रीब हैं। कुछ ऐसे अभागे भी हैं, जिनके माँ-बाप मर चुके हैं। मैं उनसे भी अभागा हूं। उनके पास अपने माँ-बाप का नाम और स्मृति तो है, मेरे पास वह भी नहीं। मैं संसार में सबसे अभागा हूँ। मुझसे ग़रीब और कोई न होगा।

रूप०—मैं कहती हूँ, तुम्हें क्या हो गया है ?

दीपक—मैं भी यही कहता हूँ कि मुझे क्या हो गया है ? कल साँझ तक मेरे पास सुख के सारे साधन थे, आज मेरे पास कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि धीरज की लाठी और आशा का दिया भी नहीं (एकाएक रूप की तरफ़ मुड़कर) रूप ! मेरी दुनिया अँधेरी है। मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।

रूप०—चलो ! मैं तुम्हारे बाप से मिलना चाहती हूँ।

दीपक—मेरा कोई बाप नहीं है, दादा ने खुद कह दिया है।

रूप०—वह तुम्हारे लिए बाप से भी बढ़कर हैं। (कंधे से पकड़ कर) चलो मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।

दीपक—(अपने आपको छुड़ा कर) मेरी मानो तो अब तुम्हें मुझको भूल जाना चाहिए !

रूप०—और तुम समझते हो, यह संभव है ?

दीपक—दुनिया में सब कुछ संभव है।

रूप०—और तुम समझते हो, मैं तुम्हें भूल सकती हूँ ?

दीपक—(रुखाई से) यह सोचना मेरा काम नहीं। मैं अपने विषय में सोचता हूं, तुम अपने विषय में सोचो।

रूप०—(टूटे हुए हृदय से) चलो, मेरी बात छोड़ो। मगर इतना तो बता दो कि अब तुम्हारा इरादा क्या है ?

दीपक—मैं अपने मन का संतोष ढूँढूँगा। अगर मिल गया, तो शायद तुमसे फिर कभी भेंट हो जाए, नहीं तो.......यही समझ लो कि यह अंतिम भेंट है। नमस्ते।

[दीपक तेज़ी से मुड़ता है, और चला जाता है। रूपकुमारी वहीं बैठी रह जाती है, जैसे उसमें हिलने-जुलने की भी शक्ति नहीं है। इतने में यशोदा घबराई हुई आती है। मगर रूप उसी तरह चुपचाप बैठी रहती है।]

यशोदा—(घबरा कर) क्या यहाँ दीपक आया था ?

रूप०—(बिना सिर उठाए, उदासी से)आया था, मगर अभी अभी चला गया है।

यशोदा—(और भी घबरा कर) कहाँ चला गया है ! उसका बाप उससे मिलने आया है।

रूप०—(उसी तरह सिर झुकाए हुए) मगर सूरदास उसका बाप नहीं है। वह सूरदास का बेटा नहीं है।

यशोदा—(जल्दी-जल्दी) रूप ! तुम नहीं जानतीं, यह दीपक रायबहादुर हीरालाल का बेटा है। और हीरालाल उसे लेने आया है।

[हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश]

हीरा०—(घबराए हुए) क्या यहाँ भी नहीं है !

जासूस— अभी तो यहीं था।

यशोदा—(रायबहादुर से) ज़रा ठहरिए ! (रूप से) बेटी, बता, वह कहाँ गया है ?

रूप०—मेरे पीछे चले आइए, शायद मिल जाए।

[सबका तेज़ी से प्रस्थान।]

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कंपनी

समय—रात

[बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश। बाटलीवाला क्रोध में है, जयकृष्ण उसे समझाने की चेष्टा कर रहा है।]

बाटलीवाला—जाना चाहे तो आज चला जाए, मगर मैं अपना अपमान नहीं सह सकता। इज़्ज़त पहले, रुपया पीछे।

जयकृष्ण—आपका अपमान कौन कर सकता है! और फिर सूरदास तो ऐसा आदमी ही नहीं है।

बाटली०—(बिगड़कर) तो क्या तुम्हारे ख़याल में मुझे ही पागल कुत्ते ने काटा है? मैं ही हवा को तलवारें मारता हूँ?

जय०—(और भी विनीत भाव से) मालूम होता है, उसके बेटे ने घर में कुछ कह दिया होगा!

बाटली०—तो फिर जाकर बेटे से लड़े, मुझसे क्यों लड़ता है? सिर्फ़ इतना कहा कि सूरदास! आज बड़ी देर कर दी। बस इसी बात पर बिगड़ बैठा, और ज़ोर ज़ोर से बोलने लगा। बताओ, इसमें मेरी क्या भूल थी?

जय०—भूल तो उसी की थी।

बाटली०—वह दिन भूल गया, जब घाट पर बैठकर पैसा पैसा माँगा करता था। आज मेरी कृपा से चार पैसे जमा हो गए, तो

मुझी से अड़कने चला है। यह भी नहीं सोचता कि उसे जो कुछ बनाया है, मैंने बनाया है। यह सब मेरी कृपा है।

जय०—यह भी क्या कहने की बात है? सारी दुनिया जानती है। और वह खुद भी जानता है और कई बार लोगों के सामने मान चुका है।

बाटली०—सचमुच इस दुनिया में जो आदमी किसी के साथ नेकी करता है, वह अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा मारता है। आज मैं जवाब दे दूँ, तो कल आटे-दाल का भाव मालूम हो जाए, दो दिन में आँखें खुल जाएँ जनाब की। इसे रोटियाँ लग गई हैं।

[सूरदास लाठी लिए आता है, और बाटलीवाला की बात सुन कर और भी बिगड़ उठता है।]

सूरदास—आख़िर आप क्या चाहते हैं? मैं काम करूँ, या चला जाऊँ? एक फ़ैसला कीजिए।

जय०—(सूरदास के पास आकर) सूरदास जी! आप जाकर अपना काम करें। आप इनकी बात न सुनें।

सूरदास—(क्रोधसे) मेरे विचार में अब यह मुझ से तंग आ गए हैं! अगर यह बात है, तो मैं इसी समय जाने को तैयार हूँ। क्यों मैनेजर साहब! जवाब देना हो तो साफ़ साफ़ कह दीजिए। मैं टेढ़ी बातें पसंद नहीं करता। मैं साफ़ बात पसंद करता हूँ।

[बाटलीवाला चुप रहता है।]

सूरदास—(और भी ज़ोर से) मैनेजर साहब!

[बाटलीवाला अब के भी चुप रहता है।]

सूरदास—(गरजकर) मैं कहता हूँ, अगर आप मुझे रखना नहीं चाहते, तो साफ़ साफ़ कह दीजिए, ताकि मैं इसी समय चला जाऊँ। मैं किसी पर बोझ बन कर नहीं रहना चाहता।

जय०—सूरदासजी ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

सूरदास—मैं कहता हूँ, मैं आज से काम न करूँगा। मेरा इस्तीफ़ा है।

जय०—(धीरे से) तो परिणाम क्या होगा ?

सूरदास—(व्यंग से) मुझे आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा मेरी आँखें खुल जाएंगी। मैं पैसे पैसे को तरसूंगा।

बाटली०—(सूरदास के हाथ में दियासलाई देकर) लो जाकर अपने हाथ से पहले कंपनी को आग लगा दो। इसके बाद जहां जाना हो, चले जाओ।

[बाटली वाला तेज़ी से बाहर चला जाता है।]

सूरदास—(विनय से) मैनेजर साहब ! मैं कंपनी को क्या आग लगाऊँगा, मेरे तो अपने ही मन में आग लगी हुई है। आप नहीं जानते, आज मुझे क्या हो गया है ?........आप नहीं जानते, आज मैं क्यों इस तरह....आप नहीं जानते....आप नहीं जानते—

जय०—ज़रा जल्दी कीजिए, आपका काम शुरू होने में अब देर नहीं है।

सूरदास—अच्छा भाई चलो ! मगर आज मेरे लिए गाना बड़ा कठिन होगा। आज मेरा मन रो रहा है। रोता हुआ मन कैसे गाएगा ?

जय०—(जाते जाते) क्यों सूरदास, आज तुम्हें क्या हुआ ?

सूरदास—आज मेरा मन टूट गया है भाई।

[जयकृष्ण सूरदास की बात नहीं समझता और उसे ले कर बाहर चला जाता है। दृश्य बदलता है।]

रंगमंच पर रंगमंच

[रंगमंच पर सावित्री-सत्यवान का नाटक खेला जा रहा है। इस समय वह दृश्य उपस्थित है, जब सत्यवान सावित्री को ब्याह कर लाता है। सूरदास सत्यवान के अंधे बाप द्युमत्सेन की भूमिका में है, और बनवासियों के वेश में माला लिए एक वृक्ष तले चबूतरे पर बैठा अपनी स्त्री से बेटे के ब्याह की बातें कर कर के खुश हो रहा है। गोया आज सूरदास दुःखी है मगर उसे काम सुखी बाप का करना पड़ा है।]

सूरदास—सत्यवान की माँ! तुमने बहू को पसंद किया? कैसी है वह? ज़रा मुझे भी तो बता।

सत्यवान की माँ—स्वामी! बहू चन्द्रमा से सुंदर, धरती से विनम्र और गंगा यमुना आदि के स्रोत से भी पवित्र है! ऐसी बहू पाकर हम धन्य हो गए।

सूरदास—और हमारा सत्यवान भी प्रसन्न है?

सत्यवान की माँ—वह ऐसा प्रसन्न है जैसे उसे देवताओं ने वरदान दे दिया हो। आज उसके पांव धरती पर नहीं पड़ते।

सूरदास—मगर सावित्री राजा की बेटी है। यहाँ आकर उदास तो न हो जाएगी? वह राजमहलों में पली है। और हम ग़रीब बनवासी हैं।

सत्यवान की माँ—स्वामी! उसने वह राजमहल और उसके ऐश-आराम अपनी खुशी से छोड़े हैं। (एक ओर देखकर) लो, वह दोनों आपको प्रणाम करने आ रहे हैं। आज का दिन बड़ा सौभाग्य-वान है।

सूरदास—भगवान्! आज मेरे मन की खुशी की सीमा नहीं। आज मेरा पुत्र बहू ब्याह कर लाया है, आज मेरी पर्णकुटी में राज-लक्ष्मी आई है। क्या तू आज एक क्षण के लिए मेरी अंधी आँखों

को देखने की शक्ति नहीं दे सकता। (रो कर) यह स्वर्गीय दृश्य दूसरों की आँखों से नहीं, अपनी आँखों से देखने की वस्तु है। भगवान् (ठंडी आह भर कर) तुम कितने निठुर हो?

सत्यवान की माँ—क्या आप रो रहे हैं? आज आपको रोना नहीं चाहिए।

सूरदास—(आँसू रोक कर) नहीं सत्यवान की माँ! आज मेरे रोने का नहीं, हँसने, मुस्कराने, और खुश होने का दिन है। आज कौन बाप रो सकता है?

[सावित्री और सत्यवान आकर द्युमत्सेन (सूरदास) के पाँव को धोते हैं। लोग तालियाँ बजाते हैं।]

सूरदास—बेटी सावित्री! तेरा श्वसुर ग़रीब है। उसके पास तुझे देने को सिवाय आशीर्वाद के और कोई चीज़ नहीं।

सावित्री—पिताजी! मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही सब कुछ है! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

सूरदास—सत्यवान! तू धन्य है जिसे ऐसी स्त्री मिली है। मैं चाहता हूँ, तू कभी इसका मन न दुखाए। प्रतिज्ञा कर।

सत्यवान—आपकी इच्छा मेरे जीवन का नियम होगी, पिताजी! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

सूरदास—जीते रहो बेटा, जीते रहो और सुखी रहो। यही मेरा आशीर्वाद है। यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है। यही मेरी मनोकामना है।

सत्यवान की माँ—बहू को भी आशीर्वाद दो। वह आज तुम्हारे घर में पहले दिन आई है।

सूरदास—जब तक आकाश की नीली छत में चाँद-सूरज के

दीपक जलते हैं, तब तक तुम्हारा नाम जीता रहे। जितनी दूर हवा जाती है, वहाँ तक तुम्हारा यश फैले। जिस तरह सागर का पानी कभी कम नहीं होता, उसी तरह तुम्हारे मन की प्रीति, पवित्रता और प्रसन्नता कभी कम न हो। और तुम्हारा धर्म सदा जीता रहे।

सत्यवान की माँ—चलो बेटी ! चल कर दूसरे महात्माओं को भी प्रणाम कर आओ।

[सत्यवान की माँ, सावित्री और सत्यवान सब चले जाते हैं। सूरदास उठ कर खड़ा हो जाता है।]

सूरदास—भगवान् ! आज मेरे जीवन में दुःख का सब से बड़ा दिन है। आज मेरी........

जयकृष्ण—(एक ओर से) 'सुख का सब से बड़ा दिन' सूरदास, 'सुख का सब से बड़ा दिन' कहो। और मुँह पर खुशी लाओ। आज तुम्हारे जीवन में सुख का सब से बड़ा दिन है।

[सूरदास अपने आप को सँभालने का यत्न करता है, मगर फिर भूल कर जाता है।]

सूरदास—आज मेरी कुटिया में बहार आई है। आज मेरा बेटा मेरे प्यार को ठुकरा गया है।

जय०—(एक ओर से दबी हुई आवाज़ में) सूरदास ! क्या कह रहे हो ? कहो, आज मेरा बेटा ब्याह कर के आया है। आज मेरा बेटा बहू ले कर आया है।

सूरदास—(घबराकर ऊँची आवाज़ में जल्दी जल्दी) आज मेरा बेटा ब्याह कर के आया है। आज मेरा बेटा बहू लेकर आया है। आज मेरी खुशी के लिए मेरा घर और मेरा मन दोनों बहुत छोटे मालूम होते हैं, आज....(भूल जाता है।) आज....(याद करने का यत्न करता है।)

आज....(घबरा जाता है।) आज....आज....आज....।

[सूरदास परेशान हो जाता है।]

जय०—(घबरा कर दबी हुई आवाज़ में) सूरदास ! जो कुछ भूल गया है, उसे छोड़ दो, और गाना शुरू कर दो।

सूरदास—अच्छा ! बाजा शुरू करो। मैं गाऊँगा।

[बाजा बजने लगता है। सूरदास गाना शुरू करता है, मगर बाजे से पीछे रह जाता है, इसलिए रुक जाता है। फिर गाना चाहता है, फिर पीछे रह जाता है। आख़िर तीसरी बार बाजे के साथ साथ गाने लगता है। जयकृष्ण शांति की साँस लेता है। मगर लोग नहीं समझते कि आज सूरदास के सीने में कौन सा तूफ़ान उठ रहा है।]

गीत

जीवन का सुख आज मोहे प्रभु !
जीवन का सुख आज।
जल थल नाचे जंगल नाचे.
नाचे बन का मोरा।
झूम झूम फूलन पर नाचे,
रस का लोभी भौंरा।
प्रभु जीवन का सुख आज।

[गीत के अंत में सूरदास अपने आपे में नहीं रहता। गाते गाते उसका स्वर ऊँचा होता जाता है। इतना ऊँचा, इतना ऊँचा कि उसका गला फट जाता है। मगर वह फिर भी उसी तरह, उसी जोश से, उसी ज़ोर से गाता रहता है। यहाँ तक कि उसकी सारी देह काँपने लगती है, मगर फिर भी गाता रहता है। दर्शक हैरान हो कर देखते हैं। मंच के एक ओर से बाटलीवाला और जयकृष्ण स्थिति को समझने

का भरसक यत्न करते हैं, मगर कुछ नहीं समझते और सूरदास अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ गाता रहता है। यहां तक कि उसके गले की आवाज़ के साथ ही उसके मन आर शरीर का बल भी जवाब दे देता है, और वह रंगमंच पर गिर कर बेसुध हो जाता है। यह देख कर दर्शकों में शोर मच जाता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण कूद कर रंगमंच पर आ जाते हैं। बाटलीवाला सूरदास का सिर अपनी गोद में ले लेता है, जयकृष्ण बिजली का पंखा लाकर सामने रख देता है। एक और आदमी पानी ला कर सूरदास के मुँह पर छींटे देता है। कई दर्शक रंगमंच पर चढ़ जाते हैं। रंगमंच पर शोर मच जाता है।]

बाटली०—(जयकृष्ण से) पर्दा गिरा दो, और किसी डाक्टर को बुला भेजो।

जयकृष्ण—(चिल्ला कर) पर्दा गिरा दो, और कोई आदमी जाकर डाक्टर को बुला लाए।

बाटली०—सूरदास, होश में आओ भाई!

जय०—(चिल्ला कर) पर्दा गिरा दो! पर्दा गिरा दो!!

[यवनिका-पतन]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—दोपहर

[लाजवंती और शामलाल बातें करते करते दाखिल होते हैं ।]

लाजवंती०—इसके बाद ?

शामलाल०—इसके बाद हमने रूपकुमारी और उसकी माँ को साथ लिया, और मोटर में बैठकर दिलीप की खोज में निकले। सबसे पहले स्टेशन पर गए, फिर घाट देखे, फिर गलियों और बाज़ारों की ख़ाक छानी। मगर उसका कहीं पता न लगा। उस समय भाई साहब को अगर तुम देखतीं, तो डर जातीं। उनके मुँह पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। कभी पीला, कभी सफ़ेद, कभी एकदम चुप हो जाते थे। शायद समझते होंगे, कि लड़का हाथ आकर हाथ से निकला जाता है। मगर मेरा मन कहता था, आज भगवान् भला करेगा, और भगवान् ने भला किया। और हमारा दिलीप हमारे हाथ लग गया।

लाज०—(मुस्कराकर) इस तरह नहीं, खोलकर कहो। मैं एक एक बात सुनना चाहती हूँ।

शाम०—(मुस्कराकर) अच्छा बाबा एक एक बात कहता हूँ।

लाज०—हाँ कहो।

शाम०—पोलीस के एक आदमी ने बताया कि उसने एक अनमने से युवक को शहर से बाहर जाते देखा था। वह युवक घबराया हुआ, सहमा हुआ, खोया हुआ था—ऐसे जैसे कोई सुपने में चल रहा हो, ऐसे जैसे कोई अपने आपसे डरकर भागा जा रहा हो, ऐसे जैसे कोई अनदेखे बोझ तले दबा जा रहा हो। और जब सिपाही ने उसकी शक्ल-सूरत बयान की, तो हमें विश्वास हो गया कि यह दिलीप ही है। बस हम उसी तरफ़ चले, और थोड़ी देर बाद हमेन उसे सड़क पर जाते देखा।

लाज०—काशी से कितनी दूर ?

शाम०— (सोचकर) कोई पाँच-छै मील दूर। उस समय उसकी पीठ हमारी ओर थी, और वह धीरे धीरे चला जा रहा था। ऐसे जैसे कोई बेकार जा रहा हो। हमने अपनी मोटार को रोक लिया और नीचे उतरने लगे। इतने में सामने से एक और मोटर आती दिखाई दी। अब दोनों मोटरों की रोशनी उसपर पड़ रही थी, और वह रोशनी से बचना चाहता था। शायद डरता था कि कोई उसे पहचान न ले। एक क्षण के लिए उसने रुककर सोचा, और फिर एक तरफ़ भागा। मगर उधर एक वृक्ष था, जिसे उसकी चुँधियाई हुई आँखों ने न देखा था। वह अपने ज़ोर में उसके साथ टकराकर पीछे की ओर गिरा, और दूसरी बार उधर से आती हुई मोटर के साथ टकराया, और दस गज़ परे जा पड़ा। उस समय हमारा दिल धक धक कर रहा था। हम प्रार्थना कर रहे थे।

लाज०—(सहमकर) भगवान् ने बचा लिया, वरना मोटर के नीचे आ जाता, तो सारे किए कराए पर पानी फिर जाता। उसे पाने की आशा भी मर जाती।

शाम०—हमने पास जाकर देखा तो वह बिलकुल बेसुध पड़ा था, और उसके सिर से लहू बह रहा था। प्रारब्ध अच्छी थी, वहाँ एक डाक्टर मिल गया। उसने मरहम-पट्टी कर दी, और हम उसे मोटर में डालकर यहाँ ले आए। अब देखें, क्या होता है? अभी तक तो किसीको पहचानता नहीं। न अपने को, न पराए को। भगवान भला करे।

लाज०—डाक्टर क्या कहता है?

शाम०—अभी कुछ नहीं कहता—कोशिश कर रहा है।

लाज०—मेरा मन कहता है सबकुछ ठीक हो जाएगा। आप दस हज़ार रुपया निकालिए।

शाम०—(मुस्कराकर) कैसा दस हज़ार रुपया?

लाज०—मैंने मनौती मानी थी कि जब दिलीप मिल जाएगा, तो दस हज़ार रुपया दान करूँगी।

शाम०—(हँसकर) मनौती तुमने मानी, जुर्माना मुझे हो। यह किस दुनिया का न्याय है?

लाज०—मैं कुछ नहीं कहती। आप ही अपने दिल पर हाथ रखकर कहिए, यह जुर्माना किसे होना चाहिए? मुझे या आपको?

शाम०—(गंभीरता से) लाज! आज मुझे बीस साल के बाद खुशी मिली है। कृपा करके आज कोई ऐसा प्रसंग न छेड़ो, जिससे मेरा मन फिर रोने लगे। घाव पर कपड़ा भी छुरी बनकर लगता है। दुखे हुए अंग को हवा भी दुखा देती है।

लाज०—तो फिर दस हज़ार रुपया निकालिए, ताकि यह प्रसंग सदा के लिए समाप्त हो जाए।

शाम०—तुम दस हज़ार कहती हो, मैं बीस हज़ार दूँगा, तीस हज़ार दूँगा। मगर उसे स्वस्थ तो हो लेने दो।

[यशोदा और भंडारी का प्रवेश।]

भंडारी—क्षमा कीजिएगा, हम पूछे बिना चले आए।

लाज०—चूँकि हम अभी तक विलायत नहीं गए, इसलिए तुम्हारी भूल माफ़ हो गई।

शाम०—(यशोदा से) अब रूप का क्या हाल है?

यशोदा—वही हाल है, जो पहले था। कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा अभी तक।

भंडारी—मैं कहता हूँ, जबतक दिलीप, (यशोदा की तरफ़ देखकर) मेरा मतलब है दीपक, ठीक नहीं हो जाता, तबतक रूपकुमारी के मुँह पर हँसी-खुशी कैसे आ सकती है? इसके लिए हमें चार दिन इंतज़ार करना पड़ेगा। मेरा मतलब है—

लाज०—(मुस्कराकर) अब दूसरी बात भी कह दो—जब मैं इंगलैंड गया था।

[सब कहकहा लगाकर हँसते हैं।]

भंडारी—(यशोदा से) मैंने रायबहादुर से कह दिया है, कि दीपक ने अपने लिए बहू चुन ली है। अब आपका काम केवल यह है कि इसपर स्वीकृति की मुहर लगा दें और ब्याह के कार्ड छपवा लें।

[बाहर से रायबहादुर की आवाज़]

हीरा०—शामलाल!

शाम०—(ऊँची आवाज़ से) आया ! (लाजवंती से) तुम भी मेरे साथ आओ लाज।

लाज०—चलो।

[दोनोंका प्रस्थान]

भंडारी—(यशोदा से) रायबहादुर ने कह दिया है कि मुझे यह संबंध स्वीकार है।

यशोदा—मगर....

भंडारी—आप ज़रा चिन्ता न करें। भगवान् की कृपा से सबकुछ ठीक हो जाएगा। एक विद्वान ने कहा है, भगवान ने आदमी को खुश होनेके लिए बनाया है। अगर आदमी उदास रहता है, तो यह उसका अपना अपराध है। मेरा मतलब है—और आप फिर मुझपर हँसेंगी।

[दोनोंका प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल के घर का एक दूसरा कमरा

समय—दोपहर

[हीरालाल, शामलाल और तीन डाक्टर। ज़रा परे लाजवंती।]

हीरा०—(उदासी से) डाक्टरों की सम्मति है कि अब दिमाग़ ठीक नहीं हो सकता।

शाम०—(घबराकर) क्यों ठीक नहीं हो सकता ?

एक डाक्टर—आपके दिलीप की स्मरण-शक्ति जाती रही है। अब उसे पहले की कोई बात याद नहीं रही।

शाम०—तो फिर इलाज क्या है ?

पहला डाक्टर—इलाज सिर्फ़ आपरेशन है !

शाम०—(घबराकर) आपरेशन !

दूसरा डाक्टर—और दिमाग़ का आपरेशन सिर्फ़ जर्मनी में होता है, और कहीं नहीं होता।

शाम०—हम जर्मनी जानेको तैयार हैं।

पहला डाक्टर—मगर वहाँ जाकर आपरेशन करानेके बाद भी निश्चित नहीं। शायद यह सबकुछ करनेपर भी कुछ न बने।

शाम०—कोशिश करनेमें क्या हर्ज है ? (हीरालाल से) क्यों भाई साहब।

हीरा०—कर लो। मुझे कोई एतराज़ नहीं। मगर डाक्टर साहब, इसमें जान का ख़तरा तो नहीं ?

दूसरा डाक्टर—जान का ख़तरा तो है।

शाम०—(हताश होकर) तो इसका तो यह मतलब है कि यह रास्ता भी बंद है।

तीसरा डाक्टर—इसका यह मतलब है, कि अगर किसी समय उसके दिमाग़ को अंदर या बाहर से कोई विशेष धक्का पहुँचे और वह उस धक्के को सह सके, तो सम्भव है उसकी स्मरण-शक्ति एक क्षण में लौट आए। दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस बीमारी का इलाज डाक्टरों के पास नहीं है, प्रकृति के पास है। प्रकृति पर छोड़ दीजिए। शायद प्रकृति उसे ठीक कर दे।

[शामलाल बेचैनी से इधर उधर टहलता है।]

शाम०—तो क्या किया जाए ?

हीरा०—तुम बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?

शाम०—(रुँधे हुए गले से) मेरी तो राय है कि हमें अपनी ओर से भरसक यत्न करना चाहिए। कौन जाने, भगवान ठीक कर दे। जिस भगवान् ने हमें बेटा लौटा दिया है, वह बेटे को उसको स्मरण-शक्ति भी लौटा सकता है। उसके घर में काहे का अभाव है।

[लाजवंती इशारे से शामलाल को अपने पास बुलाती है और धीरे-धीरे कुछ कहती है। शामलाल सुनकर रायबहादुर की तरफ़ बढ़ता है।]

हीरा०—लाजवंती क्या कहती है ?

शाम०—वह कहती है, मैं यह आपरेशन कभी न होने दूँगी। जीवन पहले, स्मरण-शक्ति पीछे। वह जीता रहे, हमारे लिए यही सबकुछ है। हम ख़तरा न खरीदेंगे।

पहला डाक्टर—बिल्कुल ठीक !

हीरा०—मेरा भी यही ख्याल है, लाजवंती ठीक कहती है। दिलीप को भूली हुई बातें याद आएँ, या न आएँ; मगर वह हमारे सामने चलता फिरता और हँसता खेलता रहे। मेरे लिए यही बहुत है। मैं इसीपर संतोष कर लूँगा।

आवाज—मगर सूरदास—

[सब आँख उठाकर देखते हैं। भंडारी बोलते बोलते आता है।]

शाम०—आइए भंडारी साहब।

भंडारी—सूरदास को तो सूचना देनी ही होगी।

शाम०—सूचना दें या उसे यहाँ बुला लें ?

भंडारी—यह और भी अच्छा ! यहीं बुला लो। वह वहा बिलख बिलखकर रोता होगा।

शाम०—(डाक्टर से) आपकी क्या राय है ? क्या यह नहीं हो सकता कि सूरदास को देखकर दिलीप को अपना भूला हुआ जीवन याद आ जाए ? सूरदास ने उसे पाला है, और उससे बाप की तरह प्यार किया है।

पहला डाक्टर—मुश्किल है।

दूसरा डाक्टर—अगर इस लड़के पर रूपकुमारी का असर नहीं हुआ, तो सूरदास का क्या असर हो सकता है ?

हीरा०—(सोचकर) तो अभी रहने दो।

भंडारी—मगर वहाँ सूरदास का क्या हाल होगा, आपको कुछ इसका भी ख़याल है ?

हीरा०—उसका वहाँ क्या हाल होगा, यह तो मैं नहीं जानता, मगर यह जानता हूँ कि यहाँ आकर उसका दिल फट जाएगा। ज़रा सोचिए, उसने इस लड़के को पाला है, इसपर अपनी जान छिड़की है, इसपर पता नहीं क्या क्या आशाएँ बाँधी हैं। और अब वह आकर देखेगा कि यह लड़का उसे भी नहीं पहचानता तो उसका क्या हाल होगा ? मैं बाप हूँ, मैं जानता हूँ, ऐसी अवस्था में वह किस तरह तड़पेगा ? और उसके मन पर किस तरह छुरियाँ चलेंगी ? इस लिए मेरा ख़्याल है अभी उसे कोई समाचार न भेजा जाए। हाँ, इसे होश आ जाए, तो सूरदास को उसी समय बुला लेना होगा।

भंडारी—ठीक है। (डाक्टर से) क्यों डाक्टर, आपकी क्या राय है ?

दूसरा डाक्टर—मेरी राय है, रायबहादुर ने लाख रुपए की बात कह दी है। अभी सूरदास को न बुलाया जाए।

तीसरा दृश्य

स्थान—काशी में कालीदास नाटक कंपनी

समय—संध्या

[बाटलीवाला और उसका सहायक जयकृष्ण]

बाटली०—यह अभिनेता लोग इतने छोटे दिल के होंगे, इसकी मुझे ज़रा भी आशा न थी। वेतन मिलनेमें चार दिन की देर हुई और इनकी जान निकलने लगी।

जय०—(धीरे से) चार दिन की नहीं, चार महीने की।

बाटली०—(क्रोध से) चार महीने की ही सही! मगर उन्हें इतना तो सोचना चाहिए कि मालिक कष्ट में है, ज़रा धीरज रखें।

जय०—कहते हैं—खाएँ कहाँ से?

बाटली०—तो कह दो, जाकर नालिश कर दें। जो होगा, देखा जाएगा। मैं नहीं दे सकता।

[डाकिया एक रजिस्ट्री लाकर बाटलीवाला के सामने रख देता है। बाटलीवाला रसीद पर हस्ताक्षर करता है, और पत्र जयकृष्ण की ओर सरका देता है। जयकृष्ण पत्र पढ़कर ठंडी आह भरता है।]

बाटली०—क्या है?

जय०—(सहमकर) एक और आफ़त।

बाटली०—मगर है क्या?

जय०—मास्टर अब्दुल करीम का भी नोटिस आ गया।

बाटली०—तो आहें भरनेकी क्या ज़रूरत है ? फाड़कर फेंक दो रद्दी की टोकरी में।

जय०—और सब लोग नोटिस दे चुके थे, एक अबदुल करीम बाक़ी था। आज उसका भी नोटिस आ गया। इसका मतलब यह है कि कंपनी समाप्त हुई। नायक के बिना कौन सा नाटक हो सकता है। नायक गया, कंपनी गई।

बाटली०—तो और रास्ता ही क्या है, तुम बताओ ?

जय०—कोई और काम न शुरू कर दें ?

बाटली०—बोलो !

जय०—जूतों की दुकान खोल लें !

बाटली०—(चमककर) हम यह काम करेंगे ? हमारा पेशा खुशियाँ बेचना है, जूते बेचना नहीं। हम यह काम नहीं कर सकते।

जय०—(सहमकर मगर साहस से) आप अमीर आदमी हैं, आप न करें। मगर मैं ग़रीब हूँ, मुझे तो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। पेट बड़ा ज़ालिम है।

[बाटलीवाला सोचते सोचते टहलने लगता है।]

बाटली०—अगर सूरदास फिर आ जाए, तो एकबार फिर उसी तरह चाँदी बरसने लगे !

जय०—अब सूरदास के फिर आने और चाँदी बरसनेके दिन गए। अब तो मुसीबतें बरसनेके दिन हैं।

बाटली०—यही तो मैं सोच रहा हूँ कि सूरदास को किस तरह फिर से लाया जाए। मुझे तो आशा है कि वह आ सकता है।

जय०—अब यह आशा छोड़ दीजिए। सूरदास आ चुका !

बाटली०—(किसी निश्चय पर पहुँचकर) जयकृष्ण! चलो एकबार सूरदास के पास फिर चलें।

जय०—(हिचकिचाकर) मगर गालियाँ कौन खाएगा ?

बाटली०—(मुस्कराकर) तुम।

जय०—और अगर वह झाड़ू लेकर मारने दौड़ा, तो—

बाटली०—(गंभीरता से) मेरी खोपड़ी की तारीफ़ करो।

जय०—कोई नई आयोजना सूझ गई ?

बाटली०—अरे जयकृष्ण ! ऐसी बात सूझी है कि फड़क उठोगे यार मेरे ! फड़क उठोगे ! सूरदास आएगा, रुपया आएगा, सफलता आएगी, और एक बार फिर दुनिया हमारी तरफ़ देखेगी। एक बार फिर हमारा सिर ऊँचा उठेगा। एक बार फिर सूखा हुआ बाग़ लहलहाएगा।

जय०—तो चलो अभी चलें। भले काम में देर बुरी।

चौथा दृश्य

स्थान—सूरदास के घर में दीपक का कमरा

समय—रात

[कल्लो की माँ और एक नौकर]

कल्लो की माँ—तुमसे कै बार कहा है कि सूरदास बीमार है, धीरे धीरे बोला करो। मगर तुम ज़रा ख्याल नहीं करते। क्या तुम बहरे हो, या पागल हो ?

[नौकर पानी की बालटी लेकर चला जाता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश। कल्लो की माँ चौंकती है।]

बाटली०—दीपक का कुछ पता मिला, कल्लो की माँ ?

कल्लो०—इस लौंडे ने सूरदास को मार डाला।

बाटली०—अब हाल क्या है ?

कल्लो०—वही जो पहले था। (ठंडी आह भरकर) कभी चुपचाप लेट जाता है, कभी गरजने लगता है। कभी गिड़गिड़ाकर दीपक को बुलाने लगता है, कभी भूमि पर गिर पड़ता है, और बच्चों के समान फूट-फूटकर रोने लगता है। बिलकुल पागल हो गया है यह तो। खाने-पीने की भी सुध नहीं रही।

जय०—मैंने ऐसा प्यार करनेवाला बाप आजतक नहीं देखा।

बाटली०—हम ज़रा सूरदास को देखने आए हैं। देख लें ?

कल्लो०—न बाबा ! तुम्हारी आवाज़ सुनकर तो वह और भी पागल हो उठेगा। क्या तुम उस दिन की बात भूल गए हो ?

बाटली०—देखो, कल्लो की माँ ! हम कल यहाँसे बाहर जा रहे हैं। इसलिए सोचा, चलो सूरदास से भी मिलते चलें। आख़िर तुम जानती हो, उसने बीस सालतक हमारे साथ काम किया है।

जय०—और अब बीमार है।

कल्लो०—मगर वह तो तुम्हारा नाम सुनकर ही—

बाटली०—तो उसको बतानेकी क्या ज़रूरत है ? हम चुपचाप दूर ही से उसे देख लेंगे।

[अंदर से सूरदास की आवाज़]

सूरदास—कल्लो की माँ ! ओ कल्लो की माँ !!

कल्लो०—लो फिर दौरा हुआ।

[दीपक के वस्त्र लिए हुए सूरदास का प्रवेश]

सूरदास—कल्लो की माँ ! क्या तुम यहाँ हो ?

कल्लो०—हाँ बाबा ! मगर तुम बाहर क्यों आ गए ?

सूरदास—देखो ! आज मैं कितना खुश हूँ ? आज मेरा जी चाहता है अपनी सितार बजाऊँ और झूम झूमकर गाऊं। क्या तुम जानती हो, आज मैं क्यों खुश हूँ। (बैठकर) अच्छा बूझ तो जाओ, मैं क्यों खुश हूँ ?

कल्लो०—(सूरदास की बात का जवाब न देकर भर्राई हुई आवाज़ में) यह आप कपड़े क्यों उठा लाए हैं इस समय ?

सूरदास—अभी अभी मैंने सुपना देखा है कि मेरा दीपक मेरे पास लौट आया है। इसलिए मैंने सोचा कि उसके लिए दो चार नए सूट सिलवा रखूँ। ताकि वह आते ही खुश हो जाए। और कल्लो की माँ, क्या तू जानती है जब मैं उसे कोई चीज़ देता हूँ तो वह क्या कहा करता है—"दादा! थैंक यू!" (ज़ोर से कहकहा लगाकर) अँग्रेज़ी पढ़-लिखे लड़के अपने माँ-बाप को बड़ी आसानी से खुश कर लेते हैं। कल्लो की माँ, दरज़ी से कहो इस सूट से माप ले ले। (जवाब न पाकर) कल्लो की माँ! (ज़ोर से) कल्लो की माँ!!

[जोश से खड़ा हो जाता है।]

कल्लो०—(रुँधे हुए गले से) हाँ बाबा।

सूरदास—(खिन्न होकर) तू मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देती ? क्या तू समझती है मेरा सुपना झूठा है ? क्या तू समझती है, मैं बकवास कर रहा हूँ ? क्या तुझे भय है कि मेरा दीपक नहीं आएगा ?

कल्लो०—आएगा क्यों नहीं ! ज़रूर आएगा। राजा बेटा है वह। बाप के पास उसे आना ही चाहिए।

सूरदास—शाबाश, कल्लो की माँ ! मैंने तेरा वेतन बढ़ा दिया। आजकल तेरा वेतन क्या है ?

कल्लो०—मैंने वेतन बढ़ानेको कब कहा है ?

सूरदास—(रोब के साथ) मैं यह सबकुछ नहीं सुनना चाहता। मेरी बात का जवाब दे। आजकल तेरा वेतन क्या है ?

कल्लो०—(टूटे हुए दिल से) बारह रुपए।

सूरदास—तो आज से मैंने पंद्रह कर दिए। मगर एक बात याद रखना। मेरे दीपक से कभी लड़ाई झगड़ा न करना। (कपड़े फेंककर) यह ले सूट, यह दर्ज़ी को दे देना। और कहना अच्छी तरह से सिये। दीपक ख़राब कपड़े नहीं पहनता। कल्लो की माँ, ज़रा सोचो उधर दर्ज़ी कपड़े सियेगा, इधर मैं अपने घर में बैठकर दीपक के लौटनेकी ख़ुशी में अपनी सितार बजाऊँगा। (सूरदास सांपव मुड़ता है, मगर भूल से उधर चला जाता है जहाँ दीपक का मेज़ पड़ा है। वहा जाकर हाथों से टटोलता है, और एक पुस्तक हाथ में लेकर कहता है—) कल्लो की माँ, क्या तुमने मेज़ को साफ़ नहीं किया ? देखो कितनी धूल पड़ी हुई है। अगर दीपक यह हाल देखे तो क्या कहे ? (पुस्तक को अपने कपड़े से पोंछकर रख देता है।) यह नौकर लोग अपने आप कोई काम नहीं करते। बस चाहते हैं, वेतन मिल जाए, खाना मिल जाए; काम न करना पड़े।

[कल्लो की माँ चुपचाप करुणा-पूर्ण आंखों से बाटलीवाला और जयकृष्ण की ओर देखती है। सूरदास आगे बढ़ता है और उस मेज़ के निकट पहुँचता है, जहां भोजन का थाल रखा है। सूरदास भोजन को छूकर देखता है, तो और भी बिगड़ उठता है, और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगता है।]

सूरदास—यह क्या ! एकदम ठंडा भोजन ! ! कल्लो की मा, मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि मेरा दीपक ठंडा भोजन पसंद नहीं करता। मगर तुम इसकी सदा उपेक्षा कर जाती हो। ज़रा सोचो, क्या यह भोजन खाने योग्य है? और ज़रा सोचो, क्या उसने आज तक कभी ऐसा ठंडा भोजन खाया है? और अगर वह खा ले, तो क्या बीमार न हो जाएगा?

[सूरदास जल्दी-जल्दी पलंग के पास जाकर देखता है। बिस्तरा ठीक बिछा है, मगर सूरदास को खिन्नता के कारण कोई बात पसंद नहीं आती। वह एक तकिया उठा लेता है और उसे हाथ में लेकर कहता है—]

सूरदास—यह तकिया क्या यहाँ रखा जाता है? और यह देखो चादर कहाँ लटक रही है?

[बाटलीवाला जयकृष्ण को संकेत करता है कि बाजा बजाओ। जय-कृष्ण बाजे की ओर बढ़ता है।]

सूरदास—(अपना वक्तव्य जारी रखते हुए) कल्लो की माँ! पता नहीं आजकल तुमको क्या हो गया है? पता नहीं आजकल तुम सारे सारे दिन क्या करती रहती हो? पता नहीं आजकल तुम्हारा ध्यान किधर रहता है? क्या तुमने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था? (क्रोध से) कल्लो की माँ! जवाब दे। क्या तूने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था? अगर रखा था तो मुझे दिखा, कहाँ है। देखूँ गरम है या नहीं? कल्लो की माँ! (ज़ोर से) कल्लो की माँ! (और भी ज़ोर से) कल्लो की माँ! तू मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देती?

[जयकृष्ण बाजे पर 'मूरख मन होवत क्यों हैरान' की ट्यून बजाना आरंभ करता है। सूरदास चौंकता है।]

सूरदास—यह कौन है? क्या दीपक आ गया? (खुशी से) कल्लो की माँ, देख ले, मेरा सुपना सच्चा निकल आया। कल्लो की माँ, देख ले, मेरा दीपक आ गया। (जल्दी-जल्दी द्वार की ओर बढ़ते हुए) मेरा दीपक आ गया।

[बाटलीवाला सामने आकर सूरदास को रोक लेता है।]

सूरदास—कौन, दीपक !

बाटली०—यह मैं हूँ सूरदास।

सूरदास—कौन? मैनेजर! आप यहाँ क्या करने आए हैं? आपका यहाँ आना मना है।

बाटली०—देखो सूरदास! मैंने तुम्हारे दीपक को ढूँढ़नेका एक उपाय सोचा है।

सूरदास—(निराश होकर) तो क्या अभी दीपक नहीं आया। भगवान तू क्या कर रहा है?

बाटली०—मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारी जीवन-कथा का एक नाटक लिखवाया जाए और उसका नाम रखा जाए 'सूरदास का बेटा' या 'सूरदास का पुत्र-प्रेम'। तुम उसमें सूरदास का काम करोगे। तुम उसमें पितृ-प्रेम को रंगमंच पर जीती जागती वस्तु बनाकर दर्शकों के सामने उपस्थित करोगे। तुम लोगों के दिल में—आग लगाओगे, आग!

सूरदास—(बिगड़कर) मैं अब नाटक में काम नहीं करूँगा। यह मेरा अंतिम फ़ैसला है।

बाटली०—अरे भाई सुनो तो सही। तुम तो बात-बात पर बिदकते हो और हवा में तलवारें चलाते हो। हम तुम्हारे पुत्र-प्रेम की अमर कहानी को लेकर भारतवर्ष के हर शहर में जाएँगे और वहाँ

बड़े-बड़े विज्ञापन देंगे। क्या यह संभव है कि दीपक यह विज्ञापन देखे और नाटक देखने के लिए दौड़ा हुआ न चला आए। कम से कम तुम्हें देखने के लिए एक बार तो उसका मन अधीर हो उठेगा, और वह नाटक देखने आएगा।

सूरदास—(कुछ-कुछ समझकर) अच्छा ! फिर ?

बाटली०—और जब वह वहाँ आकर देखेगा कि जिस प्राणी ने उसके प्राण बचाए हैं, जिसने उसका पिता न होकर उसे पिता से बढ़कर प्यार किया है, जिसने उसके लिए भगवान् का भजन छोड़कर संसार की मोह ममता में फँसना स्वीकार किया है, वही आदमी, वही देवता, वही स्नेह का अवतार, रंगमंच पर खड़ा 'दीपक' 'दीपक' कहकर चिल्ला रहा है और उसकी अंधी आँखों से प्यार का पानी बह रहा है, तो क्या वह तुम्हारे चरणों में न आ गिरेगा ? सूरदास ! आख़िर वह आदमी है, मिट्टी का लौंदा नहीं है। उसका दिल रो उठेगा।

सूरदास—(आशा-पूर्ण स्वर में) अच्छा अच्छा। अगर तुम्हारी यही सम्मति है, तो मैं चलूँगा।

बाटली०—तुम चलोगे तो मैं कहता हूँ तुम्हारा बेटा तुम्हें मिलेगा और तुम्हारे मन की खुशी तुम्हारे मन में लौट आएगी।

[सूरदास बेसुध होकर अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों को लेकर सीधा खड़ा हो जाता है और फिर घुटनों के बल झुककर प्रार्थना का यह गीत गाने लगता है—]

गीत

अंधे की लाठी तू ही है, तू ही जीवन-उजयारा है,
तू ही आकर सम्भाल प्रभू ! तेरा ही एक सहारा है।

अंधे की लाठी—

दुख दर्द की गठड़ी सिर पर है,
पग पग पर गिरने का डर है,

परमेश्वर अब पत राख तू ही, तू ही पत राखनहारा है।

अंधे की लाठी—

जिनपर आशा थी छोड़ गए, बालू के घरौंदे फोड़ गए,
मुँह मोड़ गए, मन तोड़ गए, अब जग में कौन हमारा है ?

अंधे की लाठी—

[पर्दा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—लाहौर का एक बाज़ार

समय—दोपहर

[एक मसखरा गले में ढोल डाले और हाथ में विज्ञापन लिए आता है और ढोल बजाता है। जब लोग जमा हो जाते हैं तो उनमें विज्ञापन बाँटता है, और कहता है—]

मसखरा—लाहौर के निवासियो ! काशी का यह मसखरा, काशी से चलकर आपको यह शुभ-समाचार सुनाने आया है कि आपके लाहौर में 'कालीदास नाटक कंपनी' आई है, और अपने साथ कई प्रसिद्ध अभिनेताओं के अतिरिक्त भारतवर्ष का वह अद्वितीय कलाकार भी लाई है, जो भारतवर्ष से बाहर भी मशहूर है। मेरा इशारा सूरदास की तरफ़ है। सूरदास का नाम आपने

सुना होगा, मगर उसके गले की मीठी तानें न सुनी होंगी, न उसे रंगभूमि पर काम करते देखा होगा। आज वह अपनी जीवन-कहानी सुनाएगा। जो सज्जन इस महान् कलाकार का जीवन-नाटक देखना चाहें, वह रात के साढ़े नौ बजे कालीदास नाटक कंपनी में आ जाएं। वहाँ सूरदास भी होगा, काशी का (सिर झुकाकर) यह मसखरा भी होगा। और दूसरे कलाकार भी होंगे।

[ढोल बजाता है, विज्ञापन बाँटता है, और उछलता कूदता हुआ चला जाता है।]

छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—तीसरा पहर

[यशोदा, लाजवंती और एक नौकर]

यशोदा—(नौकर से) मेरा असबाब बाँधो, मैं आज काशी जा रही हूँ।

लाजवंती—(नौकर से) ज़रा ठहरो। (यशोदा से) बहन! चाहे मानो, न मानो, मगर आज तो न जाने दूँगी।

यशोदा—रूप का ब्याह कर लिया, मन का यह बोझ भी हलका हुआ। ज़रा सोचकर देखो, अब मेरा यहाँ ठहरना उचित है क्या? आख़िर बेटी के घर में कबतक पड़ी रहूँ?

लाज०—दो-चार दिन और! और अब वहाँ तुम्हारा कौन है? अकेले पड़े-पड़े तो आदमी का जी भी ऊब जाता है।

यशोदा—(सोचकर) यह तो ठीक है, मगर बहन अब जाने ही दो, आज भी जाना है, दो दिन बाद भी जाना है।

[शामलाल का प्रवेश]

लाज०—लो देखो ! यह तो आज ही जानेको तैयार हो गईं। लाख कहा है दो दिन और ठहर जाओ, पर यह मानती ही नहीं हैं। आप इनके सामने नौकर से कह दीजिए, असबाब न बाँधे।

शाम०—(नौकर से) जाओ, जाकर इनका असबाब बाँधो। यह जाएंगी।

यशोदा—आप तो नाराज़ हो गए ! मगर ज़रा सोचिए, इसमें नाराज़ होने की क्या बात है?

शाम०—(यशोदा की बात का उत्तर न देकर, नौकर से) और हमारा असबाब भी बाँध दो।

[यशोदा आश्चर्य से शामलाल की ओर देखती है।]

लाज०—हमारा असबाब क्यों ?

शाम०—हम भी काशी जा रहे हैं।

लाज०—हम भी काशी जा रहे हैं ! मगर यह क्यों ?

शाम०—भाई साहब की आज्ञा ! (नौकर चला जाता है।)

यशोदा—बहुत ही अच्छी बात है ! कौन-कौन जा रहा है ?

शाम०—मैं, (लाजवंती की ओर इशारा करके) यह, आप, भाई साहब, रूप, दिलीप, डाक्टर, दो-चार नौकर !

यशोदा—मैं तो पहले ही कह रही थी, काशी चलो। लड़के का दिमाग़ वहीं चलकर ठीक होगा।

शाम०—आपने दो-चार बार कहा होगा, मैंने हज़ार बार कहा

था कि या हम काशी चलें, या सूरदास को यहाँ बुलाएँ। मगर भाई साहब सुनते ही न थे। आज अपने आप तैयार हो गए।

यशोदा—तो चलकर तैयारी कर लें। समय बहुत कम है।

[यशोदा का प्रस्थान]

लाज०—क्या आज ही जाना है ?

शाम०—आज ही का क्या मतलब ? अभी दो घंटे बाद। छै बजे गाड़ी छूटती है। इस समय चार बजे हैं।

लाज०—ओ बाबा ! इतना थोड़ा समय ! तो ज़रा जल्दी करूँ।

[एक ओर से शामलाल और लाजवंती का प्रस्थान, दूसरी ओर से दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश, बातें करते हुए।]

रूप०—तो तुम्हें कुछ याद नहीं आता ? मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा था ?

दीपक—(चलते-चलते रुककर) तुमने मुझे एक पत्र लिखा था ? (फिर चलने लगता है।)

रूप०—(फिर रोककर) और तुम्हें यह भी याद नहीं कि उस दिन तुम विश्व-विद्यालय में सर्वप्रथम रहे थे, और उस दिन गंगा के किनारे हमारी सुलह हुई थी।

दीपक—मुझे कुछ याद नहीं। (फिर चलने लगता है।)

रूप०—तुम्हें यह भी याद नहीं कि सूरदास कौन है ? कल्लो की माँ कौन है ? भंडारी कौन है ? मैं कौन हूँ ? (दीपक जाकर एक सोफ़े पर बैठ जाता है।) ज़रा दिमाग़ पर ज़ोर देकर सोचो। तुम सूरदास के पास रहते थे। वह तुम्हें अपना बेटा कहता था। ज़रा सोचो। तुम रेडियो में गाते भी थे।

दीपक—क्या करूँ? मुझे कुछ याद नहीं आता। हाँ, कभी-कभी ऐसा मालूम होता है, जैसे याद आ रहा है, जैसे बहुत दूरी पर पर्दे के पीछे कोई ज्योति दिखाई दे रही है। मगर जब मैं और सोचता हूँ, जब मैं उस पर्दे को हटाना चाहता हूँ, तो मेरा सिर चकरा जाता है, पृथ्वी-आकाश घूमने लगते हैं, और वह झिलमिलाती हुई ज्योति जाने कहाँ चली जाती है। मैं फिर अँधेरे में रह जाता हूं।

रूप०—तुमने एक बार एक गीत गाया था—'मूरखन मन। होवत क्यों हैरान!'

दीपक—कहाँ गाया था?

रूप०—रेडियो में, याद आया?

दीपक—(सोचते हुए) नहीं। मुझे कुछ याद नहीं।

[रूपकुमारी हारमोनियम के पास जा बैठती है।]

दीपक—मुझे कुछ याद नहीं आता।

रूप०—देखो! मैं याद कराती हूँ।

[रूपकुमारी बाजे के साथ गाने लगती है।]

गीत

मूरख मन! होवत क्यों हैरान?

सचमुच तेरी रात अँधेरी, संकट में हैं प्राण,

बाँध कमरिया, ढूँढ़ डगरिया, आन मिले भगवान।

मूरख मन!......

[रूप के साथ दीपक भी गाना शुरू कर देता है।]

दीपक—मूरख मन! होवत क्यों हैरान?

रूप०—(गाना बंद करके) तुम्हें कुछ याद आया?

दीपक—(उठकर टहलते हुए) मुझे यह गीत बड़ा मीठा मालूम होता है। सुर भी मीठा है, शब्द भी मीठे हैं।

रूप०—इसके आगे क्या है, जानते हो ?

दीपक—नहीं। (रूप के पास जाकर) यह गीत तुम्हारे मुँह से अच्छा मालूम होता है। तुम गाओ, मैं सुनूंगा।

[रूपकुमारी रोते-रोते गाती है। दीपक सुनता है।]

गीत

आनंद नगरिया दूर नहीं, अब काहे को घबरावत है ?
भगवान के घर से तेरे लिए इक सुख संदेसा आवत है।

मूरख मन !.......

[रूपकुमारी रोते-रोते गाती है, और इसके साथ ही साथ दीपक की ओर देखती जाती है कि उसकी स्मरण-शक्ति लौटती है, या नहीं। मगर दीपक की स्मरण-शक्ति नहीं लौटती। रूपकुमारी गाना बंद कर देती है, और फूट-फूट कर रोती है ।]

दीपक—तुम रोती क्यों हो ? इसमें मेरा क्या दोष है ? मुझे कुछ याद नहीं आता।

रूप०—(रोते-रोते) पता नहीं, भगवान तुम्हें तुम्हारी स्मरण-शक्ति कब वापस देगा ?

दीपक—मुझे भी पता नहीं। मगर तुम वह गीत गाओ, मुझे अच्छा लगता है।

[यशोदा का प्रवेश]

यशोदा—बेटी, तुम्हें मालूम है, आज हम सब लोग काशी जा रहे हैं।

रूप०—नहीं माँ ! हमें तो किसी ने नहीं बताया।

यशोदा—तो अब मैं बताती हूँ, तुम दोनों भी हमारे साथ चलोगे। तैयार हो जाओ।

दीपक—(बालकों के समान) मैं कहता हूँ, क्या काशी बहुत सुंदर नगरी है ?

यशोदा—(मुस्कराकर) मैं कहती हूँ, यह बात मैं कल काशी जाकर तुमसे पूछूँगी।

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—(दीपक से) आपको ज़रा बाहर बुला रहे हैं।

दीपक—मुझे ?

नौकर—जी हाँ आपको भी, और (रूप की ओर इशारा करके) आपको भी।

दीपक—(उठकर) अच्छा ! (रूप से) चलो ! !

[पर्दा गिरता है]

सातवाँ दृश्य

स्थान—रावबहादुर हीरालाल के घर का आँगन

समय—तीसरा पहर

[दुर्गादास साधु के वेष में आता है। पीछे-पीछे हीरालाल और शामलाल हाथ बाँधे हुए आ रहे हैं।]

दुर्गादास—मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि तुम्हारा बेटा मिल गया है। तुम्हें बधाई हो।

शाम०—मगर स्वामी जी ! हमें अभी पूरा बेटा नहीं मिला, अभी आधा मिला है। आपके आशीर्वाद से, जो आधा नहीं मिला, वह भी मिल जाएगा, और हमारे पूरे दिल खुश होंगे ?

दुर्गादास—भई ! मैं किस योग्य हूँ ?

[दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश]

हीरा०—यही वह लड़का है, और यह उसकी बहू है। बेटा ! स्वामी जी को प्रणाम करो। इनका आशीर्वाद हमारी बिगड़ी हुई तकदीर को सीधा कर देगा। प्रणाम करो।

[दीपक और रूपकुमारी दुर्गादास को प्रणाम करते हैं।]

दुर्गा०—आदमी कुछ नहीं करता। जो कुछ करता है, भगवान् करता है। भगवान् पर भरोसा रखो।

शाम०—महात्मा जी ! आशीर्वाद दीजिए ! हमें आपका आशीर्वाद चाहिए।

दुर्गा०—भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।

[**बाहर कोई ढोल बजाते हुए गुज़र जाता है। यह वही मसखरा है, जो नाटक के विज्ञापन बाँट रहा है।**]

हीरा०—स्वामी जी ! अब मेरा मन कहता है, मेरा बेटा ठीक हो जाएगा। अब मुझे शांति मिल गई।

दुर्गा०—भगवान् कृपा करेगा भाई ! भगवान् पर आशा रखो। उसके घर में किसी चीज़ की कमी नहीं।

शाम०—स्वामी जी ! मेरी एक प्रार्थना है।

दुर्गा०—कहो भाई !

शाम०—मगर आपको उसे स्वीकार करना होगा। यह मैं पहले से कहे देता हूँ।

दुर्गा०—अगर स्वीकार करनेवाली बात होगी, तो साधु उसे कभी अस्वीकार न करेगा। फ़रमाइए।

शाम०—बात यह है कि मैं कुछ धन धर्म के काम में लगाना चाहता हूँ, और मेरी श्रद्धा यह है कि वह धन आपके पवित्र हाथों से खर्च हो ! हमें इसी से संतोष होगा।

हीरा०—स्वामी जी ! यह मेरा भी अनुरोध है। और आपको हमारा अनुरोध मानना पड़ेगा।

दुर्गा०—भाई ! इस समय अगर तुम मुझे धन दे दोगे, तो मेरे आशीर्वाद का प्रभाव जाता रहेगा, और इससे मेरा और तुम्हारा दोनों का अमंगल होगा। आशीर्वाद की कीमत नहीं होती।

[दुर्गादास तेज़ी से बाहर चला जाता है।]

दीपक—पिता जी ! यह कौन महात्मा थे।

हीरा०—बेटा ! इनका गृहस्थ मैंने नष्ट किया है, और इन्होंने मुझे फिर भी आशीर्वाद दिया है। यह बहुत बड़े महात्मा हैं।

शाम०—भाई साहब ! हमारा संकल्प तो रह गया। स्वामी जी ने रुपया नहीं लिया।

हीरा०—तुमने देखा, यह ग़रीब आदमी कितना अमीर है, और हम अमीर लोग इसके सामने कितने ग़रीब, कितने तुच्छ, कितने छोटे हैं ! हमारी उसके सामने कोई गिनती ही नहीं।

शाम०—जो आदमी किसी को क्षमा कर सकता है, वह आदमी नहीं, देवता है।

[भंडारी का प्रवेश]

भंडारी—कौन देवता है ?

हीरा०—(भंडारी की बात का उत्तर न देकर) तुम आगए। बहुत

अच्छा किया। हम आज काशी जा रहे हैं।

भंडारी—और अगर काशी यहाँ आ जाए, तो—

शाम०—क्या मतलब ?

भंडारी—(जेब से एक विज्ञापन निकालकर और उसे हीरालाल के हाथ में देकर) सूरदास लाहौर में। यानी काशी लाहौर में।

हीरा०—(खुशी से) शामलाल ! देखो, भगवान् ने सूरदास को यहीं भेज दिया है। ?

[शामलाल विज्ञापन पढ़ता है।]

शाम०—मालूम होता है, हमारी पाप की अवधि समाप्त हो गई।

भंडारी—मेरा मतलब है, सूरदास दीपक के बिना काशी में रह नहीं सकता था। This is divine love.

हीरा०—जाओ जाकर असबाब खुलवा दो। अब काशी जाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा मनोरथ यहीं सिद्ध होगा।

भंडारी—Amen !

[सबका प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

स्थान—कालीदास नाटक कंपनी का रंगमंच

समय—रात

[कालीदास नाटक कंपनी में "सूरदास का पुत्र-प्रेम" नामक नाटक खेला जा रहा है, जिसमें सूरदास स्वयं सूरदास की भूमिका में काम कर रहा है। दर्शकों में हीरालाल, शामलाल, दीपक, रूप, यशोदा, लाजवंती, भंडारी भी उपस्थित हैं। इस समय नाटक का वह दृश्य दिखाया जा रहा है, जब दीपक सूरदास से आकर यह प्राण-घातक प्रश्न पूछता है कि क्या मैं आप ही का पुत्र हूं।]

रंगभूमि

सूरदास—तो बेटा सुनो! भगवान् तुम्हें लोहे का दिल और पहाड़ का कलेजा दे। बीस साल की बात है, जब काशी में एक दिन गंगा के घाट पर एक अबोध बालक पड़ा था। उसे एक अंधे भिखारी के प्यार ने उठाया, पाला, पढ़ाया और बड़ा किया। आज वह बालक दीपक है, आज वह अंधा भिखारी सूरदास है।

रंगभूमि का दीपक—तो इसका यह मतलब है कि मैं अपने घर में भी पराया हूँ।

सूरदास—(बाहें फैलाकर) तू अपने घर में पराया नहीं है। तू मेरी अंधी दुनिया की शोभा है, तू मेरे जीवन की निराश-निशा में आशा का मीठा स्वर है, मेरे काँपते हुए बुढ़ापे की लाठी है।

रंगभूमि का दीपक—नहीं, मैं अनाथ हूँ।

सूरदास—मेरे बच्चे! तू अनाथ नहीं है, तू अपने आपको अनाथ क्यों कहता है? अभी तेरा अंधा बाप जीता है, और उसके दिल में तेरे सिवाय और किसी के लिए स्नेह नहीं। तू उसका सबकुछ है।

रंगभूमि का दीपक—अब से एक घंटा पहले मेरी भी यही धारणा थी। मगर अब मालूम हुआ कि मैं अँधेरे में था। मेरे अपने बाप ही ने कह दिया कि मैं तेरा बाप नहीं हूँ।

सूरदास—मैंने कब कहा है कि मैं तेरा बाप नहीं? तू ही कहता है कि तू मेरा बेटा नहीं है। मगर बेटा! मेरा भगवान् जानता है कि मैंने तुझे सदा अपना बेटा समझा है, और अब भी, जब तक जीता हूँ, मैं तुझे बेटा ही समझूँगा। और विश्वास रख जिस दिन मैं तुझे बेटा न समझूँगा, उस दिन मैं मैं न रहूँगा।

रंगभूमि का दीपक—(अपने बाप से) मगर मेरे माँ-बाप ने मुझे घाट पर क्यों फेंक दिया? क्या उनके पास मेरे खिलाने के लिए रोटी न थी? क्या उनके मुँह में मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था? क्या मैं पाप का पुत्र हूँ?

सूरदास—(रुंधे हुए गले से) तू अपने बूढ़े बाप के दिल को तोड़ने वाली, और उसके कानों में गरम सीसा उँडेलने वाली बातें क्यों करता है? क्या तुझे मेरा ख्याल नहीं! दीपक, मेरी बात सुन।

रंगभूमि का दीपक—(सूरदास के पाँव छूकर) दादा, आज्ञा दीजिए।

सूरदास—(झुककर दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है।) दीपंक! दीपक!! (ज़ोर से) दीपक!!!

रंगभूमि का दीपक—(जाते-जाते) आशीर्वाद दीजिए कि मुझे मेरा बाप मिल जाए, और मैं दुनिया में अनाथ न रहूं।

[तेज़ी से चला जाता है।]

सूरदास—(इधर-उधर हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए) मेरे बेटे! क्या तू जा रहा है? नहीं, आज तुझे नहीं जाना चाहिए। आज तेरा परीक्षा-फल निकला है, कल मेरे घर में तेरे मित्रों का निमंत्रण है, और तू मुझे छोड़कर जा रहा है। दीपक इधर आ! मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान तेरे बाप को इसी घर में तेरे पास भेज दें। (कोई उत्तर न पाकर और उत्तेजित होकर) दीपक! (ज़ोर से) दीपक!! (और भी ज़ोर से) मैं कहता हूँ, लौट आ! मैं कहता हूं, मेरे पास चला आ! (रोते हुए) दीपक! दीपक!! बेटा, तू तो इतना निर्मोही न था। तेरा वह प्यार कहाँ चला गया? दीपक! दीपक!! मैं तेरा बाप हूँ। मुझे छोड़कर न जा। मैं अंधा हूँ।

[दर्शकों में बैठा हुआ दीपक एकाएक जोश से तनकर खड़ा हो जाता है। हीरालाल और शामलाल इत्यादि उसकी ओर आश्चर्य और आशा के मिश्रित भावों से देखते हैं। दर्शक दीपक से बैठ जाने को कहते हैं, मगर वह किसी की परवाह नहीं करता। चारों ओर शोर मच जाता है।]

दर्शक—(चिल्लाकर) बैठ जाओ ! बैठ जाओ !

दूसरा दर्शक—कृपा करके बैठ जाओ। हमें कुछ दिखाई नहीं देता। बैठ जाओ, हमें नाटक देखने दो।

तीसरा—बैठ जाओ

शाम०—(हीरालाल से) मेरा ख्याल है, इसे होश आ रहा है। ज़रा देखिए, इसका चेहरा बदल रहा है।

हीरा०—(दीपक की ओर देखते हुए) देखते चलो, भगवान् क्या करता है ! शायद—

सूरदास—(रंगभूमि पर अभिनय करते हुए) दीपक ! मैं कहता हूँ, तुम मुझे छोड़कर मेरी खोज करने कहाँ जा रहे हो ? दीपक ! दीपक !! इधर आओ। मेरी बाहें तुम्हारे लिए खाली हैं।

असली दीपक–(कुछ-कुछ होश में आकर] यह मुझे कौन बुला रहा है ? (रूप से) क्या तुम जानती हो ?

रूपकुमारी—यही सूरदास है, क्या तुम इसे नहीं पहचानते ? ज़रा याद करो।

[दीपक माथे पर हाथ फेरता है।]

सूरदास—(दीपक की आवाज़ सुनकर) यह किसकी आवाज़ थी ? यह कौन बोला था ?

असली दीपक—यह मैं दीपक हूँ ! क्या आप मुझे बुला रहे हैं ?

(आश्चर्य से चारों ओर देखता है ।) आप कौन हैं ? मैं यहां हूं । मैं दीपक हूं ।

सूरदास—(पहचानकर और खुशी के मारे चिल्लाकर) कौन दीपक! क्या तू दीपक है ? मेरा दीपक ?

असली दीपक—(बिलकुल होश में आकर) कौन दादा! क्या यह आप हैं ? दादा........दादा........

रूप०—(खुशी से) होश आ गया !

सूरदास—(चिल्लाकर) दीपक ! तू कहाँ है ?

असली दीपक—(चिल्लाकर) दादा, मैं यहाँ हूँ ।

सूरदास—(और भी ऊँची आवाज़ से) दीपक !

असली दीपक—(रोते हुए) दादा !

सूरदास—(आगे बढ़कर) दीपक ! तू आ गया ? तू किधर है ? तू मेरे पास आ ! दीपक तू मेरे पास आ !! तू जानता है, मैं अंधा हूँ । मैं गिर पड़ूँगा ।

असली दीपक—(आगे बढ़ते हुए) आया दादा ! मैं आया ! मैं आया !

सूरदास—(भुजाएं फैलाकर) दीपक ! तू आता क्यों नहीं, तू देर क्यों करता है ?

दीपक—(रंगभूमि पर चढ़कर और सूरदास के गले से लिपटकर) दादा ! तुम्हारा दीपक आ गया ।

[हाल में कोलाहल मच जाता है । लोग नहीं समझते कि आज उनके सामने रंगभूमि पर नाटक और जीवन का मिलाप हो गया है और कि जिस दीपक को सूरदास नाटक में खोज रहा था, वह उसे सचमुच मिल गया है । हीरालाल, शामलाल, रूपकुमारी, यशोदा सजल नेत्रों से सूरदास के

पुत्र-स्नेह का यह स्वर्गीय दृश्य देखते हैं और रंगभूमि पर चढ़ जाते हैं। भंडारी दर्शकों में चुपचाप खड़ा रहता है, और यह सब कुछ देखता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण रंगभूमि पर आकर खड़े हो जाते हैं।]

बाटलीवाला—पर्दा गिरा दो। पर्दा गिरा दो।

जय०—पर्दा गिरा दो।

सूरदास—(दीपक को गले से लगाए हुए) मैनेजर साहब ! मेरा बेटा आ गया !

बाटली०—पर्दा गिरा दो।

[पर्दा गिर जाता है। हाल में और भी शोर मच जाता है, इतने में बाटलीवाला आकर पर्दे के आगे खड़ा हो जाता है और लोगों को चुप होने का संकेत करता है। हाल में सन्नाटा छा जाता है।]

बाटली०—सज्जनो ! आप यह सुनकर खुश होंगे कि हमारी नाटक कंपनी जिस उद्देश्य को लेकर काशी से निकली थी, वह उद्देश्य आपकी लाहौर नगरी में आकर पूरा हो गया। दीपक बाप को छोड़कर चला आया था, और उसे भूल गया था। मगर बाप का प्यार बेटे को न भूला था। वह प्रतिदिन इस नाटक में बेटे को रो-रोकर पुकारता था, और निराश होकर रोता हुआ लौट जाता था। आख़िर आज बेटे के हृदय ने बाप के प्यार की पुकार को सुना, और उसे लेकर बाप के चरणों में उपस्थित हो गया। (तालियाँ) सज्जनो ! आज स पहले यह नाटक सूरदास के आँसुओं पर समाप्त होता था, आज इस नाटक में सूरदास के आँसू समाप्त हो गए हैं। मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि अब यह पिता-पुत्र कभी अलग न हों।

[बाटलीवाला सिर झुकाता है, लोग तालियाँ बजाते हैं।]

समाप्त